शब्दिका

ओबीओ साहित्योत्सव स्मारिका 2017

सम्पादकः

रवि प्रभाकर

ओबीओ की सातवीं वर्षगाँठ को समर्पित

ओपनबुक्स ऑनलाइन टीम प्रबंधन

गणेश जी 'बागी'
संस्थापक सह मुख्य संपादक

योगराज प्रभाकर
मुख्य संपादक

सौरभ पाण्डेय
सदस्य, टीम प्रबंधन

राणा प्रताप सिंह
सदस्य, टीम प्रबंधन

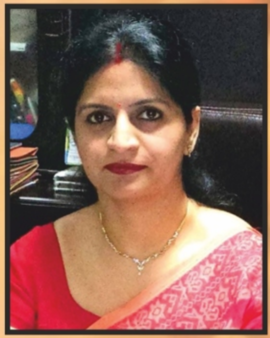

डॉ. प्राची सिंह
सदस्य, टीम प्रबंधन

राजेश कुमारी
कार्यकारिणी सदस्य सह संयोजक

शरदिन्दु मुकर्जी
कार्यकारिणी सदस्य

अरुण कुमार निगम
कार्यकारिणी सदस्य

गिरिराज भंडारी
कार्यकारिणी सदस्य

शिज्जु 'शकूर'
कार्यकारिणी सदस्य

मिथिलेश वामनकर
कार्यकारिणी सदस्य

सम्पादकीय

आदरणीय परिवारजन,
सादर अभिनन्दन !

सात बरस पूर्व भाई गणेश बागी जी ने जो बीज बोया था, आप सबके सहयोग से आज वह छायादार वृक्ष बनने की तरफ अग्रसर है। कुछ वर्ष पूर्व मैंने इसी मंच से कहा था कि अपने शैशवकाल ही से ओबीओ का चेहरा-मोहरा आश्वस्त कर रहा था कि यह नन्हा बालक अपने पाँव पर खड़ा होने में अधिक समय नहीं लेगा। और हुआ भी वैसा ही। इससे पहले कि मैं आगे की बात करूँ, मैं आप सब को ओपनबुक्स ऑनलाइन के इतिहास के बारें में ओबीओ के संस्थापक एवं सर्वेसर्वा श्री गणेश बागी के का सहारा ले रहा हूँ

"दो दशक पूर्व जब भारत में इन्टरनेट अपने शुरूआती दौर में था, अभिव्यक्ति का सुलभ माध्यम पत्र, पत्रिकायें ही थीं और इन माध्यमों पर बड़े बड़े साहित्यकार और संपादक मानो कुण्डली मारे बैठे थे। क्या मजाल कि किसी नव-हस्ताक्षर का लिखा छप जाए! नव-हस्ताक्षर अपनी रचनाओं को प्रकाशन हेतु भेजते और संपादक जी उसे कचरे में। लेखक हतोत्साहित हो जाता। कुछ स्थानीय एवं छोटे स्तर की पत्र पत्रिकायें छाप भी देतीं तो उनकी पहुँच बहुत ही सीमित होती थी। मंचो पर एकाधिकार कल क्या आज भी उन मठाधीशों का ही है जो नये हस्ताक्षरों को पनपने देने में अपने अस्तित्व पर खतरा महसूस करते हैं। यदि हमें कोई जानकारी चाहिए होती थी तो उसके लिए एकमात्र रास्ता पुस्तकालय ही हुआ करता था जो आम जन की पहुँच से कोसों दूर था। ऐसी परिस्थितियों में इन्टरनेट तपते रेगिस्तान में शीतल छाँव की तरह आया और आया तो ऐसा आया कि छा गया।

बात 2010 की है, मैंने महसूस किया कि अंतर्जाल पर साहित्य में काम तो हो रहा है किन्तु यह सभी कार्य वन-वे हो रहा है। ब्लागस्पाट के रूप में छोटी छोटी इकाइयों में लिखने वाले लेखकों की पहुँच एक सीमित पाठक गण तक ही है और वो एक दूसरे से अपनी रचनाओं को पढने की चिरौरी करते हुए दिखते है। कई लेखक साथियों के ब्लॉग पर आते हैं और वाह वाह, क्या बात है, बहुत खूब लिखने के बाद अपने ब्लॉग का पता देते हुए यह कह जाते है कि कृपया यहाँ भी पधारें। यानी अपरोक्ष रूप से कहते है कि "मैं तेरी पीठ खुजाता हूँ, तू मेरी खुजा"।

ऐसे में मुझे विचार आया कि क्यों ना एक ऐसी वेबसाईट तैयार की जाए जहाँ सभी लेखक एक छत के नीचे हों, एक दूसरे के गुरु भी बने और शिष्य भी, इंटरएक्टिव कार्यक्रम हो, एक परिवार की भाँति सीखने सिखाने का कार्य हो, लेखकों को प्रोत्साहित किया जाय। इसका परिणाम हआ कि 1 अप्रैल 2010 को ओपन बुक्स ऑनलाइन परिवार विधिवत अस्तित्व में आ गया। वो कहते है ना .... मैं अकेला ही चला था जानिब-ए-मंजिल मगर, लोग साथ आते गए कारवां बनता गया।"

कुछ वर्ष पूर्व मैंने इसी मंच से कहा था कि अपने शैशवकाल ही से ओबीओ का चेहरा-मोहरा आश्वस्त कर रहा था कि यह नन्हा बालक अपने पाँव पर खड़ा होने में अधिक समय नहीं लेगा। और हुआ भी वैसा ही।

हमारा मुख्य उद्देश्य जहाँ नवोदित रचनाकारों को मौलिक लेखन के लिए मंच प्रदान करना है वहीं साहित्य की विभिन्न विधाओं विशेषकर शास्त्रीय छंदों का प्रचार व प्रसार करना भी है। इसके अतिरिक्त यह मंच रचनाकारों को साहित्यिक व मंचीय अनुशासन से परिचित करवाने हेतु भी कार्यरत है। इसलिए कहना न होगा कि आज ओबीओ हर गम्भीर नवोदित रचनाकार का मनपसंद ठिकाना बन चुका है। क्योंकि बिना किसी पक्षपात के नव लेखन को प्रोत्साहित करने में इस परिवार का कोई सानी नहीं है। रचनाएं प्रकाशित करने वाले तो अनेक मंच मौजूद हैं, लेकिन रचनाओं पर इतनी उच्च-स्तरीय समालोचना शायद ही कहीं और देखने को मिलती हो। हमारे सभी आयोजन एक वर्कशॉप की तरह होते हैं जहाँ रचना के गुण-दोषों पर खुल कर चर्चा की जाती है। उसी का परिणाम है कि कुछ अरसा पहले बेहद अनगढ़ साहित्य रचने वाले भी आज लगभग सम्पूर्ण रचनाएं रच रहे हैं। हमारे बहुत से गजलकार, छंदकार, एवं लघुकथाकार साहित्यिक क्षेत्र में अपनी पहचान भी स्थापित कर चुके हैं।

हमारे सुप्रसिद्ध "ओबीओ लाइव तरही मुशायरा" तथा "ओबीओ लाइव महा-उत्सव" व "ओबीओ लाइव चित्र से काव्य तक छंदोत्सव" अपनी हीरक जयंती मना चुके हैं, इस श्रृंखला में सबसे युवा "ओबीओ लाइव लघुकथा गोष्ठी" भी अपनी रजत जयंती मना चुकी है। इन सभी आयोजनों से बहुत सी प्रतिभाएँ उभरकर सामने आई है, और आ भी रही हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इन आयोजनों की चुनिन्दा रचनाओं के संकलन निकाले जाएँ ताकि पटल पर मौजूद सर्वश्रेष्ठ साहित्य किताब का रूप लेकर आलोचकों तथा शोधकर्ताओं तक पहुँच सके। इसके इलावा हमारे वर्तमान लाइव आयोजनों की तर्ज पर ही इस वर्ष एक और महाना आयोजन प्रारंभ करने का भी विचार है, यह महाना गोष्ठी किसी ऐसी विधा पर होगी जिस विधा में काम बहुत कम हो रहा है। इस आशय का प्रस्ताव जल्द ही प्रबन्धन समिति के विचाराधीन लाया जाएगा।

ओबीओ परिवार केवल अंतर्जाल के माध्यम ही से सक्रिय नहीं है बल्कि जमीनी तौर पर भी अपना काम कर रहा है। इस उद्देश्य से लखनऊ के बाद भोपाल एवं कानपुर में भी ओबीओ चौप्टर की स्थापना हुई। इन तीनों इकाईओं को सम्पूर्ण स्वायत्ता दी गई है ताकि वे बिना किसी हस्तक्षेप से अपना काम कर सकें। मुझे यह बताते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि ये तीनो चौप्टर मासिक गोष्ठियों के माध्यम से साहित्य के प्रचार प्रसार में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। इस अवसर पर मैं इन तीनो इकाईओं से जुड़े पदाधिकारियों व सदस्यों का हार्दिक शुक्रिया अदा करता हूँ।

इस मंच पर छंद के बीज के बीज बोने वाले आ० आचार्य संजीव सलिल जी व श्री अम्बरीश श्रीवास्तव जी, भाई राणा प्रताप सिंह जी के साथ तरही मुशायरे की शुरुआत करने वाले श्री नवीन चतुर्वेदी जी, ओबीओ के संस्थापक दल के आद० रवि "गुरु" जी तथा प्रीतम तिवारी जी का जिक्र किया जाना भी बनता है। आज भले ही ये महानुभाव मंच पर सक्रिय नहीं हैं, लेकिन इस अवसर पर उनके योगदान को याद न करना कृतघ्नता होगी। इनके इलावा इस मंच पर ग़ज़ल की बाकायदा शिक्षा देने वाले आ० तिलकराज कपूर जी, भाई वीनस केसरी जी व मोहतरम जनाब समर कबीर साहिब की मेहनत को भी यह मंच सलाम पेश करता है।

7 वर्ष पूर्व हम एक दूसरे का हाथ पकड़ कर चल पड़े थे, कहाँ जाना है इसका पता तो था। लेकिन वहाँ तक कैसे पहुंचना है यह नहीं मालूम था। तब रास्ते में नए साथी मिले, कुछ बुजुर्गो ने सही रास्ता बताया। धीरे-धीरे हम ऊबड़-खाबड़ रास्तों के काँटों को हटाते हुए आगे बढ़ते रहे। सात वर्ष के लम्बे सफर में कई पड़ाव पार करने के बाद भी हमे किसी तरह की कोई खुशफहमी नहीं होनी चाहिए। हमें सदैव याद रखना होगा कि दिल्ली अभी बहुत दूर है। इसलिए आवश्यक है कि हम सब एक दूसरे का हाथ मजबूती से थामें रहें और अपना सफर जारी रखें।

मैं इस शुभ अवसर पर ओबीओ संस्थापक भाई गणेश बागी जी को हार्दिक बधाई देता हूँ जिन्होंने यह मंच हम सब को प्रदान किया। मैं उन्हें दिल से धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझ अकिंचन को इस विशाल परिवार की बागडोर सम्हालने के योग्य समझा।

आदरणीय साथियो! भले ही मैं इस टीम का कप्तान हूँ लेकिन सच तो यह है कि अपनी टीम के बगैर मैं शून्य हूँ। इसलिए इस अवसर पर मैं अपनी प्रबंधन समिति के सभी विद्वान साथियों आद. सौरभ पाण्डेय जी, श्री राणा प्रताप सिंह जी एवं डॉ० प्राची सिंह जी का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने कदम कदम पर मेरा साथ दिया और मंच की बेहतरी हेतु उचित निर्णय लेने में सदैव मेरा मार्गदर्शन किया। मंच की कार्यकारिणी के सभी सदस्यों का भी दिल से शुक्रिया जिनकी अनथक मेहनत ने मंच को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। मैं मंच से जुड़े हुए हर सदस्य को भी धन्यवाद कहता हूँ जिनके स्नेह की बदलौत आज यह मंच नई बुलन्दियाँ छूने की ओर अग्रसर है।

जय हिन्द। जय ओबीओ।

योगराज प्रभाकर
(प्रधान संपादक)

संदेश

मित्रों, ओपन बुक्स ऑनलाइन डॉट कॉम के सात वर्ष पूर्ण होने तथा ओबीओ परिवार के देहरादून में हो रहे वार्षिक साहित्यिक आयोजन हेतु ओबीओ भोपाल परिवार की ओर से हार्दिक बधाईयाँ देता हूँ। ओपन बुक्स ऑनलाइन परिवार वास्तव में एक ऐसा साहित्यिक मंच है जिसने कई साहित्य अभ्यासियों को सीखने का एक सुनहरा अवसर प्रदान किया है। साहित्य जगत में आई नई पीढ़ी को साहित्य संस्कार देकर मंच ने अपनी सार्थकता सिद्ध कर दी है। यही कारण है कि लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, भोपाल आदि शहरों में ओपन बुक्स ऑनलाइन के चौप्टर शुरू किये गए हैं जो प्रतिमाह साहित्यिक संगोष्ठियाँ आयोजित करते हुए साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दे रहे हैं।

ओपन बुक्स ऑनलाइन जैसे सीखने सिखाने की परंपरा को स्थापित करने वाले मंच का श्री गणेश जी 'बागी' और उनके मित्रों द्वारा जो बीज बोया गया था आज वह एक विशाल वृक्ष बन गया है। ओबीओ के प्रधान संपादक श्री योगराज प्रभाकर जी ने अपने कुशल हाथों से इसे सींचा है, संवारा है। आज साढ़े तीन हजार से अधिक सदस्यों का यह परिवार साहित्य सेवा में लगातार आगे बढ़ रहा है। भारत के विभिन्न राज्यों में अपने वार्षिक सम्मलेन आयोजित कर रहा है। इसी कड़ी में देवभूमि उत्तरांचल की राजधानी देहरादून में आयोजित वार्षिक सम्मलेन हो रहा है। इसमें एकत्रित हो रहे सभी साहित्यिक मित्रों को मैं भोपाल चैप्टर की ओर से हार्दिक शुभकामनायें देता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि देहरादून का यह आयोजन भी ओबीओ के अन्य आयोजनों की तरह एक सफल और अविस्मरणीय कार्यक्रम होगा। इस कार्यक्रम की संयोजक श्रीमती राजेश कुमारी 'राज' एवं श्रीमती साधना शर्मा जी को साधुवाद प्रेषित करता हूँ। पुनः हार्दिक बधाईयाँ एवं शुभकामनाएँ।

जहीर कुरैशी
अध्यक्ष
ओबीओ भोपाल चैप्टर

❖❖❖ ❖❖❖

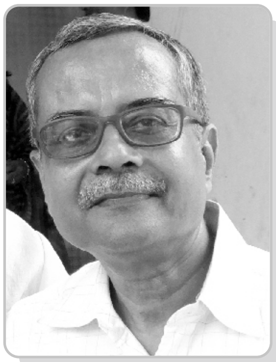

शरदिन्दु मुकर्जी
संयोजक
ओबीओ लखनऊ चैप्टर

एक इंसान की सबसे कोमल अनुभूति है उसके इर्द–गिर्द चलती–फिरती दुनिया की हर आवाज, हर दर्द, हर किलकारी को अपने रूह से महसूस करना। यही अनुभूति जब विह्वल होकर बाहर आ जाती है तो उसका प्रकाश विविध रूपों में दृष्टिगोचर होता है। जब एक संवेदनशील हृदय बाहरी हाव–भाव से नहीं, हाथ–पैर या चेहरे की आकृति–विकृति से नहीं अपितु स्थिर होकर अपने अंदर उमड़ते शब्दों को लेखनी की नोक पर लाकर, संतुलित भाव और भाषा के अनुशासन में कागज पर उतारता है तो साहित्य की सृष्टि होती है। जो इसका प्रयास करते हैं वे साहित्यानुरागी होते हैं, जो सफल होते हैं वे साहित्यकार हैं। आम तौर पर इस समुदाय के लोग संकोची होते हैं। इसलिए ऐसे संकोची और सुकुमार–चित्त लोगों को एक मंच की तलाश होती है जहाँ वे निरूसंकोच अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकें। सात साल पहले ओपन बुक्स ऑनलाईन डॉट कॉम की स्थापना कर इस अनोखे साहित्यिक मंच के संस्थापक और उनके सहयोगियों ने विशेष रूप से नवांकुरों के लिए संभावनाओं का द्वार खोलकर जिस प्रकाश को उनके जीवन में आने दिया उसकी चमक बहुत दूर तक और बहुत दिनों तक उन्हें अनुप्राणित करती रहेगी।

ओबीओ लखनऊ चौप्टर अपने पाँचवें वर्ष में है। उसने बहुत उतार–चढ़ाव देखे हैं लेकिन उन्हीं के बीच अपने उद्देश्य के प्रति समर्पित रहकर, लगातार कुछ नया करने की कवायद करते हुए बिना अपवाद हर महीने स्तरीय साहित्यिक गोष्ठी आयोजित करते रहने में सफल भी हुआ है। उसके प्रयासों को ओबीओ के अभिभावकों और पूरे परिवार द्वारा कभी निरूशब्द तो कभी मुखर प्रोत्साहन मिलता रहा है। इस हेतु आज इस संदेश के माध्यम पहले मैं लखनऊ चैप्टर की ओर से पूरे ओबीओ परिवार का आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही, सातवीं वर्षगाँठ के अवसर पर भोपाल, कानपुर, हल्द्वानी, देहरादून में सक्रिय ओबीओ के चौप्टर को शुभकामनाएँ देता हूँ गौरवपूर्ण भविष्य के लिए और देश–विदेश में व्याप्त ओबीओ परिवार के सभी सदस्यों का इस आनंदोत्सव में अभिनंदन करता हूँ। अस्तु !!!

❖❖❖ ❖❖❖

संदेश

ओपन बुक्स ऑनलाइन डॉट कॉम की स्थापना जिस उद्देश्य को लेकर हुई, ईश कृपा और साथियों के सतत प्रयास से दिन प्रति दिन विकास के नित नए आयाम रचता अपना ओबीओ उन सभी स्वप्नों को पूरा कर रहा है। ओबीओ परिवार का आभासीय दुनिया से निकलकर भौतिक दुनिया में भी मिलने का सद्प्रयास बहुत ही सकारात्मक कदम है। इस तरह के साहित्यिक समागम न केवल साहित्य सृजन के लिए नूतन सोच का संचार करते हैं बल्कि हम परिवारी जनों को और भी निकट ले आतें है। मुझे आशा ही नही, वरन पूर्ण विश्वास है कि पिछले सभी सहित्योत्सवों की भांति यह कार्यक्रम भी अपनी सफलता के लिए स्मरणीय रहेगा। मेरी अनन्त शुभकामनाएं।

❖❖❖ ❖❖❖

सीमा सिंह
संयोजिका
ओबीओ कानपुर चैप्टर

ओपनबुक्स ऑनलाइल डॉट काम
द्वारा दिनांक 9 सितंबर, 2017 को
देहरादून (उत्तराखंड) में आयोजित होने वाले

साहित्योत्सव

की सफलता हेतु हार्दिक शुभकामनाएं!

From:
RAHUL COMPUTERS
#1, First Floor, Sheranwala Gate, Patiala (Punjab)
Ph.: 0175-5008675, 09876930229, 094649-69740

कविता क्या है ?

- सौरभ पांडे

पुराने मनीषियों की अवश्यकता और समझ के अनुसार कविता श्रव्य थी. इसी कारण, कविता और छंदों में शाब्दिक चमत्कार को निरुपित करने के लिए अलंकारों की आवश्यकता होती थी. उससे पूर्व नाट्यशास्त्र के नव-रसों के मा।म से कविता को श्रेणीबद्ध करने का साग्रह प्रयास किया गया ताकि कोई शाब्दिक संप्रेषण मानवीय मनोदशा की आवश्यकता के अनुसार हुए शाब्दिक-निवेदन को प्रतिस्थापित कर सके.

मानवीय विकासगाथा में काव्य का प्रादुर्भाव मानव के लगातार सांस्कारिक होते जाने और संप्रेषणीयता के क्रम में गहन से गहनतर तथा सुगठित होते जाने का परिणाम है। मानवीय संवेदनाओं को सार्थक अभिव्यक्ति नाट्यशास्त्र और इसकी विधाओं से मिली जहाँ से काव्यशास्त्र ने अपने लिए आवश्यक अवयव ग्रहण किये। इन्हीं अवयवों के कारण ही प्रस्तुतियाँ क्लिष्ट से क्लिष्टतर होती गयीं और निवेदन गहन से गहनतर होते चले गये। ग। इसी मानवीय मानसिक विकास का अगला रूप है।

मूलभूत शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद मनुष्य के लिए यह कभी संभव नहीं रहा कि वह केवल उन आगामी क्षणों की प्रतीक्षा करता रहे जब उसे पुनः अपने और अपने आश्रितों के शरीर के संकेतों को संतुष्ट करना भर उसके जीवन का उ ेश्य हो जाय। उसके लिए पेट की अस्मिता के आगे वैचारिकता स्थान लेती रही है। यही वैचारिकता मनुष्य की संप्रेषणीयता को समृद्ध करने का कार्य करती है। अनादिकाल से ! काव्यशास्त्र के यही आधारभूत अवयव कविता को समझने और कविता के माध्यम से वैचारिक संप्रेषणीयता को समझाने के भी मूल रहे हैं।

क्यों न आज हम यही समझने का प्रयास करें कि कविता वस्तुतः है क्या।

भाव संप्रेषण की वह शाब्दिक दशा जो मानवीय बुद्धि के परिप्रेक्ष्य में मानवीय संवेदना को तथ्यात्मक रूप से अभिव्यक्त करे, कविता होती है। सपाट भावाभिव्यक्ति सहज और सुगम भले ही हो तथ्यात्मकता को संवेदनाओं का साहचर्य और संबल नहीं दे सकती। इसीकारण भावुकता का अर्थवान स्वरूप जहाँ कविकर्म है वहीं उसकी शाब्दिक परिणति कविता।

इसका अर्थ यह हुआ कि कविता शब्द–व्यवहार के कारण भाषायी–संस्कार को भी जीती है। इसी कारण भाषा –व्यवहार और शब्द–अनुशासन कविता के अभिन्न अंग हैं। अर्थात, भावुक उच्छृंखलता कभी कविता हो ही नहीं सकती। जबकि यह भी उतना ही सत्य है कि भावुकता ही कविता का मूल है। यानि, मात्र एक तार्किक शब्द अपने होने मात्र से कविता का निरुपण कर सकता है। क्योंकि शब्द मात्र इंगित न होकर भाव–भावना–अर्थ का भौतिक समुच्चय हैं। शब्द वृत्तियों के भौतिक निरुपण की भौतिक इकाई हैं। वृत्तियों के निर्वहन में शब्द एक बडी भूमिका निभाते हैं। अतः चित्त का विवेक, यानि बुद्धि, कविता की उत्पत्ति और समझ दोनों के लिए अनिवार्य है।

कविता संप्रेषण के कई साधन हो सकते हैं तथा इन साधनों की कितनी ही प्रासंगिक, अप्रासंगिक विधायें ! छंदबद्धता, छंद–उन्मुक्तता इसके मुख्य साधन हैं और मात्रिकता, गणना, तुकान्तता, गेयता, अलंकार, संप्रेष्य तथ्य आदि–आदि उन साधनों के अवयव।

वर्तमान में व्यावहारिकता के लिहाज से कविता के दो रूप हो सकते हैं –

- पहला, कविता, जो भाव–विस्फोट को शब्दों की ऐसी काया दे जो गेय या वाच्य हो
- दूसरा, कविता, जो प्राणिगत भावोद्गार को शब्दों का ऐसा प्रारूप दे जिसे बुद्धि द्वारा साधा जा सके

इस तरह से कविता सुनने–गाने के साथ–साथ पढ़ने–गुनने और उसके आगे मनन–मंथन की भी चीज हो जाती है।

इस लिहाज से हम कविता की उत्पत्ति के दो रूप मान सकते हैं –

- पहला, मानसिक एकाग्रता, जिसके कारण संप्रेषण हेतु निरीक्षण संभव हो पाता है।

- दूसरा, सतत शाब्दिक अभ्यास ताकि कथ्य सार्थक रूप से संप्रेष्य का निर्वहन कर सके।

वस्तुतः कविता का मुख्य कार्य श्रोता–पाठक की भावदशा को संवेदित करना होता है। इस आधार पर हम यह कहने की स्वतंत्रता ले सकते हैं कि जिस शब्द–व्यवहार से मानवीय संवेदनाएँ प्रभावित हो जायें वही कविता है। इसी कारण ऊपर कहा जा सका है कि एक सान्द्र शब्द अपने आप में एक समृद्ध कविता की भावदशा को जी सकता है। लेकिन, इस निवेदन के साथ कि इस उच्च अवस्था की अनुभूति के पहले भाव–साधना तथा शब्द–साधना के घोर तप से गुजरना होता है। कविता का कोई रूप क्यों न हो उसका हेतु और उसकी प्रासंगिकता मानवीय संवेदना को संतुष्ट या प्रभावित करना है। इस विचार से कविता गेय हो, वाच्य हो या पठनीय ही क्यों न हो।

पुराने मनीषियों की अवश्यकता और समझ के अनुसार कविता श्रव्य थी। इसी कारण, कविता और छंदों में शाब्दिक चमत्कार को निरुपित करने के लिए अलंकारों की आवश्यकता होती थी। उससे पूर्व नाट्यशास्त्र के नव–रसों के मा।म से कविता को श्रेणीबद्ध करने का साग्रह प्रयास किया गया ताकि कोई शाब्दिक संप्रेषण मानवीय मनोदशा की आवश्यकता के अनुसार हुए शाब्दिक–निवेदन को प्रतिस्थापित कर सके। आज कविता पठनीय हो गयी है। इसके प्रारूपों में मात्र शब्द ही नहीं, बल्कि गणित शास्त्र के मान्य और स्वीक्रुत गणितीय–चिह्न भी कविता का मुख्य भाग बन गये हैं जिनको ध्वनियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया ही नहीं जा सकता। अतः कविता श्रव्य मात्र रह ही नहीं गयी है। अपितु, यह विचारों की अति गहन इकाई भी हो चुकी है।

तो प्रश्न उठना सहज ही है कि क्या ऐसा कोई संप्रेषण कविता है ?

उत्तर में प्रति–प्रश्न होगा, कि क्या ऐसा कोई संप्रेषण व्यवहार में समेकित रूप से मानवीय संवेदना को प्रभावित कर पाता है ?

यदि वास्तव में एक बड़ा वर्ग ऐसे संप्रेषण को समझता है और प्रभावित होता है तो वह कविता है। और, यह कविकर्म की मानसिक सम्पन्नता और श्रोता–पाठक की मानसिक व्यवस्था के संयमित मेल पर निर्भर करता है कि कोई संप्रेषण मानवीय मर्म की किस गहराई तक अपनी पहुँच बना पाता है।

यानि, एक स्तर से नीचे की कविता प्रबुद्ध श्रोता–पाठकों को जहाँ संवेदित या संतुष्ट नहीं कर सकती तो एक स्तर से आगे की कविता कतिपय श्रोता–पाठकों के लिये दुरूह हुई उनसे अस्वीकृत हो जाती है। इस के लिए जहाँ तक संभव हो, दोनों इकाइयों का उत्तरोत्तर मानसिक विकास आवश्यक है। अन्यथा, एक विन्दु के बाद कविता अपने कर्तव्य से गिरती दिखती है, तो श्रोता–पाठक अपने मानसिक, वैचारिक, भावप्रधान विकास से वंचित रह जाते हैं।

❑❑❑

तेरे इश्क में जब नहा कर चले

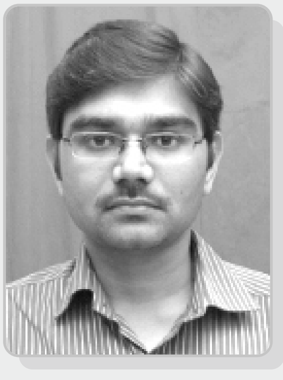

धर्मेन्द्र कुमार सिंह
बिलासपुर

सभी पैरहन हम भुला कर चले
तेरे इश्क में जब नहा कर चले

न फिर उम्र भर वो अघा कर चले
जो मजलूम का हक पचा कर चले

गये खर्चने हम मुहब्बत जहाँ
वहीं से मुहब्बत कमा कर चले

अकेले कभी अब से होंगे न हम
वो हमको हमीं से मिला कर चले

न जाने क्या हाथी का घट जाएगा
अगर चींटियों को बचा कर चले

तरस जाएगा एक बोसे को भी
वो पत्थर जिसे तुम खुदा कर चले

लगे अब्र भी देशद्रोही उन्हें
जो उनके वतन को हरा कर चले

समर कबीर
उज्जैन

तन्हाई में अक्सर सोचा करते हैं
हम को क्या करना था और क्या करते हैं

हम शाईर हैं,हम से क्या पोशीदा है
दुनिया को हर रंग में देखा करते हैं

उनसे बढ़कर झूट न कोई बोलेगा
जो भी सच कहने का दावा करते हैं

ऐसे भी नादान हैं जो घर का रोना
बाजारों में बैठ के रोया करते हैं

उनकी आदत है सैराब नहीं करते
कतरा कतरा प्यास बुझाया करते हैं

दुनिया वाले चौन से सोते हैं और हम
जख्मों की गहराई नापा करते हैं

दुनिया भर की लानत है उन लोगों पर
जो अपने ईमान का सौदा करते हैं

अपना तो ईमान यही है यार 'समर'
जो भी वह करते हैं अच्छा करते हैं

❖❖❖

गले प रख के वो तलवार बोले
वही कहना जो ये सरकार बोले

हमें बर्बाद कर देगा तिरा सच
मिरी बस्ती के इज्जतदार बोले

हमारा खानदानी वस्फ है ये
हमेशा जानिब–ए–हकदार बोले

कई नामों से हमको जानते हैं
कोई तूफ़ाँ,कोई मंझधार बोले

बुराई पीठ के पीछे करेगा
मिरे मुँह पर जरा इक बार बोले

है मुझ को आरजू उस हमसफर की
जो वीरानों को भी गुलजार बोले

कुसूर इन शाईरों का भी नहीं जी
वही देंगे जो ये बाजार बोले

'समर' तुम दुश्मनों पर टूट पड़ना
सिपह सालार जब यलगार बोले

❖❖❖

तनाबें सब उखड़ गईं तुम्हारे एतबार की
हमें न अब सुनाइये कहानियाँ बहार की

फकीर की,न शाह की,न जोहरी ,सुनार की
यहाँ पे बात कर रहा हूँ मैं तो सिर्फ प्यार की

जरा सी देर बाद ये चराग बुझ ही जाएगा
हदें तमाम खत्म हो रही हैं इन्तिजार की

चढ़े दिमाग पर तो फिर कभी न वो उतर सके
मुझे तलाश है जनाब–ए–मन उसी खुमार की

नदी किनारे झाड़ियों में छुप के बैठता है वो
सताए उसको भूक जब तलब लगे शिकार की

सुलूक इसके साथ जो भी जी में आए कीजिये
गजल तुम्हारे सामने रखी है खाकसार की

खुशी से झूमते हो,झूम लो 'समर' जरा सुनो
खबर तो कोई लाओ मेरे गम के रेगजार की

❖❖❖

आशिकों की आँखो का रुख बदलने लगता है
जब किसी जवानी का चाँद ढलने लगता है

इब्तिदा खुशामद से इल्तिजा से होती है
और फिर ये होता है,नाम चलने लगता है

सब्र की नसीहत भी काम कुछ नहीं करती
जब किसी की चाहत में दिल मचलने लगता है

हमने दिल को ले जाकर उस जगह पे रख्खा है
जिस जगह पे ख्वाहिश का दम निकलने लगता है

जब भी मैं अंधेरों से हमकलाम होता हूँ
इक चराग सा मेरे दिल में जलने लगता है

आखिरत के बारे में जब भी सोचता हूँ मैं
रूह कांप जाती है दिल दहलने लगता है

किस लिये हो अफसुर्दा ,क्यूँ 'समर' परीशाँ हो
रात जब गुजरती है दिन निकलने लगता है

❖❖❖

राणा प्रताप सिंह

भूख की चौखट पे आकर कुछ निवाले रह गए
फिर से अंधियारे की जद में कुछ उजाले रह गए

आपकी ताकत का अंदाजा इसी से लग गया
इस दफे भी आप ही कुर्सी संभाले रह गए

लाख कोशिश की मगर फिर भी छुपा ना पाए तुम
चंद घेरे आँख के नीचे जो काले रह गए

जब से मंजिल पाई है होता नहीं है दर्द भी
देते हैं आनंद जो पाओं में छाले रह गए

जम गए आंसू, चुका आक्रोश, सिसकी दब गई
इस पुराने घर में बस चुप्पी के जाले रह गये

अब डुबा दे या कि पहुंचा दे मुझे उस पार तू
हम तो सब कुछ भूलकर तेरे हवाले रह गए

उनसे बढ़कर इस जहाँ में है नहीं कोई धनी
अपने पुरखों की विरासत जो संभाले रह गए

मुझ पे इलजाम अगर लगता है
आपके जेरेअसर लगता है

तुझमे खूबी न जिसे आये नजर
वो बड़ा तंगनजर लगता है

इक दिया हमने जलाया था कभी
अब वही शम्सो कमर लगता है

ढूंढ आये हैं खुशी हम घर घर
ये हमें आखिरी घर लगता है

यूँ तो है बात बड़ी छोटी पर
बात करते हुए डर लगता है

एक तेरे ही नहीं होने से
ये जहां जेरोजबर लगता है

रुख पे मुस्कान, जिगर में खंजर
ये तो उनका ही हुनर लगता है

सरपरस्ती जो मिली ऐसा लगा
धूप में जैसे शजर लगता है

जब से वो मेरी दीवानी हो गई
पूरी अपनी राम कहानी हो गई

काटों ने फूलों से कर लीं यारियां
गुलचीं को थोड़ी आसानी हो गई

थोड़ा थोड़ा देकर इस दिल को सुकूं
याद पुरानी आँख का पानी हो गई

सारे बादल छुट्टी पर जबसे गए
सूरज से थोड़ी शैतानी हो गई

जब जब आँखों से तुमको पढने चले
तब तब धड़कन की मनमानी हो गई

जब भी सुनानी चाही अपनी दास्तां
एक गजल फिर से तूलानी हो गई

जितना था सब नाम तुम्हारे कर दिया
हमसे इतनी सी नादानी हो गई

जिन्होंने रास्तों पर खुद कभी चलकर नहीं देखा
वही कहते हैं हमने मील का पत्थर नहीं देखा

मिलाकर हाँथ अक्सर मुस्कुराते हैं सियासतदाँ
छिपा क्या मुस्कराहट के कभी भीतर नहीं देखा

उन्हें गर्मी का अब होने लगवा अहसास शायद कुछ
कई दिन हो गए उनको लिए मफलर नहीं देखा

सड़क पर आ गई थी पूरी दिल्ली एक दिन लेकिन
बदायूं को तो अब तक मैंने सड़कों पर नहीं देखा

फकत सुनकर तआर्रुफ हो गया कितना परेशां वो
अभी तो उसने मेरा कोई भी तेवर नहीं देखा

अभी तो बाबुओं ने ही उसे दौड़ा के रक्खा है
अभी तो उसने ढंग का एक भी अफसर नहीं देखा

ये जैसलमेर की जलती जमीं कुछ पूछती तुझसे
बता ऐ अब्र तूने क्यूं कभी मुड़कर नहीं देखा

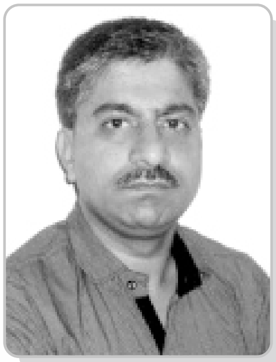

खुरशीद खैराड़ी

जोधपुर

फैसले के लिए सिक्का न उछाला जाए
जान माँगे जो वतन वक्त न टाला जाए

हाँ मैं हूँ मुल्क तुम्हारा न उछालो मिट्टी
नौजवानों मुझे गड्ढे से निकाला जाए

अच्छे अच्छों के किये होश ठिकाने लेकिन
होश में हो जो उसे कैसे सँभाला जाए

आपने कह दिया झट से कि मैं, मैं हूँ ही नहीं
मेरे भीतर मुझे थोड़ा तो खँगाला जाए

जह्र के दाँत उखाड़ो कि कुचल डालो फन
आस्तीनों में यूँ नागों को न पाला जाए

मुफलिसी ने मिरी आगाह किया है मुझको
यार पव्वे के लिए वोट न डाला जाए

कोई 'खुरशीद' कहीं हो तो सुने मेरी सदा
गाँव के आखरी घर तक भी उजाला जाए

❖❖❖ ❖❖❖

राजेश कुमारी

देहरादून

कहीं मलबा कहीं पत्थर कहीं मकड़ी के हैं जाले
कहानी गाँव की कहते घरों के आज ये ताले

किया बर्बाद मौसम ने छुड़ाया गाँव घर आँगन
यहाँ दिन रात रिसते हैं दिलों में गम के ये छाले

भटकते शह्र में फिरते मिले दो वक्त की रोटी
सिसकते गाँव के चूल्हे तड़पते दीप के आले'

कहाँ संगीत झरनों के परिंदों की कहाँ चहकन
निकलते अब पहाड़ों के सुरों से दर्द के नाले

लुटा सुख चौन सब अपना कहें किससे कहाँ जाएं
उधर वो चीखते पर्वत इधर चुप ये जहाँ वाले

कहीं सौगात खुशियों की मिले उनसे किसानों को
सहम जाते पहाड़ों पर घिरें बादल जहाँ काले

फकत मजबूरियाँ अपनी कलेजों पर धरे पत्थर
उसी को छोड़ना पड़ता हमें जिस गोद ने पाले

गुरप्रीत सिंह

पटियाला

मुझ पे तू मेहरबां नहीं होता
मैं तेरा कद्रदां नहीं होता।

बोलने वाले कब ये समझेंगे
चुप है जो बेजुबां नहीं होता।

कोई अरमान हम भी बोते. . .गर
मौसम–ए–दिल खिजाँ नहीं होता।

ख्वाहिशो सीने पे न दस्तक दो
अब मेरा दिल यहां नहीं होता।

जो बचाए किसी को कातिल से
वो सदा पासबाँ नहीं होता।

चाहे कितना उठे धुआँ ऊपर
वो कभी आसमाँ नहीं होता।

❖❖❖

आस दिल में दबी रही होगी
और फिर ख्वाब बन गई होगी।

टूट जाए सभी का दिल या रब
दिलजले को बड़ी खुशी होगी।

जह्र हारा हुआ सा बैठा है
दिल से तकरार हो गई होगी।

जिसकी खातिर लुटा दी जान उसने
चीज वो भी तो कीमती होगी।

जब मुड़ा तेरी ओर परवाना
शमअ बेइन्तहा जली होगी।

रवि शुक्ला
बीकानेर

दिन सुहाने हो गए राते सुहानी हो गईं,
उनके आते ही बहारें जाफरानी हो गईं।

रंग और खुशबू की बातें अब कहानी हो गईं,
मुश्किलें लगता है जैसे जाविदानी हो गईं।

आसमाँ ने जब उफक पर चूम धरती को लिया,
कमसिनी को छोड़कर ऋतुएं सुहानी हो गईं।

बेकरारी आज जितनी है कभी पहले न थी,
आदतें भी सब्र की जैसे कहानी हो गईं।

मिहनतों को जब मिला तेरा सहारा ए खुदा,
मुश्किलें भी मेरी घट कर दरमियानी हो गईं।

रेत का इक सैल आया सब उड़ाकर ले गया,
कैस की तन्हाइयाँ फिर से खजानी हो गईं।

जल गया था तूर तेरे नूर की पाकर झलक,
ख्वाहिशें मेरी जो थीं वो लनतरानी हो गईं।

तसदीक अहमद खान
अजमेर

सुन तो ले दास्ताने बर्बादी।
घर के बाहर खड़ा है फर्यादी।
लोग करते रहे विकास मगर
हम बढ़ाते रहे हैं आबादी।
पी रहा हूँ उन्हें भुलाने को
मैं नहीं हूँ शराब का आदी।
सिर्फ गम है यही जिसे चाहा
साथ उसके न हो सकी शादी।
क्या दुआ दें तुम्हें सिवा इसके
हो मुबारक ये खाना आबादी।
दी है सैयाद ने परिंदे को
पर कतरने के बाद आजादी।
वो तो तस्दीक उनका कूचा है
जिस को समझे है क़ैस की वादी।

जिन्दगी हम तमाम कर बैठे।
दिल सितमगर के नाम कर बैठे।
हो गई सिर्फ हम से यह गलती
राजे उल्फत को आम कर बैठे।
यक बयक क्या निगाह उनसे लड़ी
नींद अपनी हराम कर बैठे।
जो सियासत को लाया मजहब में
उसका हम एहतराम कर बैठे।
जो न अब तक जबान कर पाई
वह निगाहों से काम कर बैठे।
वह किसी संग दिल का है कूचा
तुम जहां पर कयाम कर बैठे।
वह न तस्दीक आये फिर भी हम
बज्म का इहतिमाम कर बैठे।

निलेश नूर
इन्दौर

बन गया वह राष्ट्र का सरदार क्या?
हो गए हैं स्वप्न सब साकार क्या?

सत्य से बढ़कर तो ईश्वर भी नहीं,
राष्ट्र क्या फिर मित्र क्या परिवार क्या?

राष्ट्र की सेवा सभी का धर्म है,
कर रहे हो तुम कोई उपकार क्या?

देख कर इक कोमलांगी के अधर,
कल्पना लेने लगी आकार क्या?

आचरण में धर्मग्रंथो को उतार,
बाद में दे ज्ञान उनका सार क्या.

❖ ❖ ❖

दर्पणों से कब हमारा मन लगा
पत्थरों के मध्य अपनापन लगा.

लिप्त है माया में अपना ही शरीर
ये समझ पाने में इक जीवन लगा.

तप्त मरुथल सी हृदय की धौंकनी
हाथ जब उस ने रखा चन्दन लगा.

मूर्खता पर करते हैं परिहास अब
जो था पीतल वो हमें कुन्दन लगा.

प्रेम में भी कसमसाहट सी रही
प्रेम मेरा आपको बन्धन लगा.

जल रहे हैं हम यहाँ प्रेमाग्नि में
और उस पर ये मुआ सावन लगा.

मंदिरों की सीढ़ियों पर भूख थी
चन्द्र भिक्षापात्र सा बर्तन लगा.

माँ को अम्मी कह रहा था मित्र, बस!
उसका आँगन अपना ही आँगन लगा.

बरसों बाद भी देखो, इक जगह पड़े हो तुम
संग की तरह बेहिस, सख़्त हो गये हो तुम

जन्म तो लिया था पर, गाह जी नहीं पाये
अपनी लाश का कब से, बोझ ढो रहे हो तुम

ऐसे छटपटाओ मत, और डूब जाओगे
दलदली जगह है ये जिस जगह खड़े हो तुम

बेकराँ समंदर है, और लहरें तूफानी
थोड़ी देर ठहरो तो, जिद पे क्यों अड़े हो तुम

हर बयान पर मेरा, अख़्तिजाफ़ करते हो
दिल में अपने क्या—क्या भ्रम, पाल के रखे हो तुम

शहर की हवाओं के, हर मिजाज को समझो
जाने कब बदल जाये, शहर में नये हो तुम

बेसबब ख़यालों की, गर्दिशों से निकलो अब
अजनबी सवालों से, आजकल घिरे हो तुम

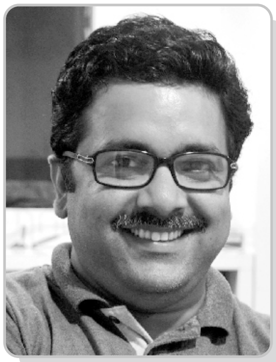

शिज्जू शकूर
रायपुर

गुमनामियों में खो गये कुछ लोग हार के
कुछ आ गये वरक पे फसाना—निगार के

सपने तमाम पलकों से मैंने उतार के
लौटा दिये हयात को लम्हे उधार के

बेचौनियाँ मिली मुझे तेरी तलाश में
तुझको ही खो दिया तेरी आर्जू में हार के

काँटों के चुभते ही मैं हक़ीकत में आ गया
खुश था मुगालतों की वो घड़ियाँ गुजार के

अपनी जबाँ से जिसने जलाई हैं निस्बतें
मा'ने बता रहे हैं वही इन्क़िसार के

पत्थर से जैसे रौशनी टकरा के रुक गई
धारे पकड़ लिये किसी ने आबशार के

मैं शाम तक भटकता रहा शहर भर मगर
मुझको मिले न पल मेरे ही इख़्तियार के

कैद को क्यों नजात कहता है
क्या कजा को हयात कहता है ?

तीन को अब जो सात कहता है
बस वही ठीक बात कहता है

क्यूँ न तस्लीम उसको कर लूँ मैं
वो मिरे दिल की बात कहता है

कैसे कह दूँ कि वास्ता ही नहीं
रोज वो शुभ प्रभात कहता है

ऐतराज उसको है शहर पे बहुत
हाथ अक्सर जो हात कहता है

उसकी बीनाई भी है शक से परे
जो सदा दिन को रात कहता है

जीत जब भी मिली, वो काबिल था
मात को फर्जी मात कहता है

जेह'न बदला नहीं मिरा अब तक
दर्द, अब भी निशात कहता है

है तर्कों की कहाँ.. हद जानता हूँ
मुबाहिस का मैं मक्सद जानता हूँ

करें आकाश छूने के जो दावे
मैं उनका भी सही कद जानता हूँ

बबूलों की कहानी क्या कहूँ मैं
पला बरगद में, बरगद जानता हूँ

बदलता है जहाँ, पल पल यहाँ क्यूँ
मै उस कारण को शायद जानता हूँ

पसीने पर जहाँ चर्चा हुआ कल
वो कमरा, ए सी, मसनद जानता हूँ

यकीनन कोशिशें नाकाम होंगीं
मै उनके तीरों की जद, जानता हूँ

मिरा गिरना किसी की है मसर्रत
हुआ है कौन गद गद, जानता हूँ

गिरिराज भंडारी
दुर्ग

किन्तु इनका क्या करें ?

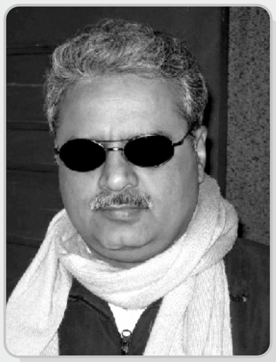

सौरभ पांडे
इलाहाबाद

खिड़कियों में घन बरसते
द्वार पर पुरवा हवा..
पाँच–तारी चाशनी में पग रहे
सपने रवा !
किन्तु इनका क्या करें ?

क्या पता आये न बिजली
देखना माचिस कहाँ है
फैलता पानी सड़क का
मूसता चौखट जहाँ है
सिपसिपाती चाह ले
डूबा–मताया घुस रहा है
हक जमाता है धनी–सा
जो न सोचे..
क्या यहाँ है ?

बंद दरवाजा, खुला बिस्तर,
पड़ी है कुछ दवा..
किन्तु इनका क्या करें ?

मात्र पद्धतियाँ दिखीं
प्रेरक कहाँ सिद्धांत कोई
क्या करे मंथन
विचारों में उलझ उद्भ्रान्त कोई
चढ़ रहा बाजार
फिर भी क्यों टपकता है पसीना ?
सूचकांकों के गणित में
पिट रहा है क्लान्त कोई

एक नचिकेता नहीं
लेकिन कई वाजश्रवा
किन्तु इनका क्या करें ?

सिमसिमी–सी मोमबत्ती
एक कोने में पड़ी है
पेट–मन के बीच, पर,
खूँटी बड़ी गहरी गड़ी है
उठ रही
जब–तब लहर–सी
तर्जनी की चेतना से,
ताड़ती है आँख जिसको
देह–बन्धन की कड़ी है

फिर दिखी है रात जागी
या बजा है फिर सवा..
किन्तु इनका क्या करें ?

सूर्य तो बस सुधा कूप है

प्रेम की गुनगुनी धूप है
सूर्य तो बस सुधा कूप है

हंस रहा रश्मियाँ भेजकर
तीर्थ के दीप सा बल रहा
कष्ट में पुष्प सा खिल गया
अनगिनत विश्व का छंद है

कांति का शांति का रूप है
सूर्य तो बस सुधा कूप है

ब्रह्म के कण विचरते हुए
बल तेरा मिल गया हर दिशा
शून्य में रूप तू इष्ट का
अस्त पर व्यस्त तू फिर कहीं
कर्म का धर्म का यूप है
सूर्य तो बस सुधा कूप है

सृष्टि के पुत्र का पालना
तप्त भी तो मनुज के लिए
सिंदूरी सिंदूरी थपकियाँ
कोपलें, गर्भ की सर्जना
मन प्रजा में छिपा भूप है
सूर्य तो बस सुधा कूप है

मिथिलेश वामनकर
भोपाल

मन में रोंपा है हमने तो केवल केसर...

डॉ. प्राची सिंह
हलद्वानी

सौंधा–सौंधा
चहका–चहका
मन में रोंपा है हमने तो
केवल केसर...

बन फुहार कुछ तुम भी बरसो
ख़ुद को आज तरल होने दो,
उहापोह अब छोड़ो सारी
ख़ुद को जरा सरल होने दो,

गुमसुम पल बस प्यार भरी इक
आहट से ही खिल जाएँगे,

प्रश्न सदा जो रहे निरुत्तर
उनके भी हल मिल जाएँगे,

कठिन कहाँ है
मन को छूना ?
छू लोगे तो, रंग न छूटेगा
जीवन भर...

सूखा भावों का दरिया तो
जीवन होगा मरुधर जैसा,
फिर बबूल औ' नगफनी का
बंधन होगा आखिर कैसा?

मत जमने देना भावों को
लहर–लहर बस बहने देना,

होंठ अगर ख़ामोशी ओढ़ें
तो आँखों को कहने देना,

इक दूजे से
नजर फेर कर
चल देते हैं, भूल यहीं करते हैं
अक्सर...

प्रतिभा पाण्डेय
कोटा

भरा हुआ आशा से मन तो, हर मुश्किल है हारी ।
सूखी शाखों के पीछे से ,मुस्काती फुलवारी ।।

शुष्क आज जीवन है तो क्या , कल बादल आयेंगे ।
सोंधी मिट्टी की खुश्बू से, मन को भर जायेंगे ।।
सपनों का पीछा मत तजना ,कोशिश रखना जारी ।
सूखी शाखों के पीछे से, मुस्काती फुलवारी ।।

चिंता आशंका जाले में ,मन को कैद न रखना ।
एक किरण जो बुझी राह में, दूजी मन में भरना ।।
नहीं थाल में सजी मिलेगी, खुश रहने की बारी ।
सूखी शाखों के पीछे से , मुस्काती फुलवारी ।।

बाधाओं के पार खड़ी है, प्रीत सलोनी तेरी ।
आस मिलन की जोड़ चला चल ,करनी क्यों अब देरी ।।
शूल गड़े हों मन में लेकिन, बुझे नहीं चिंगारी ।
सूखी शाखों के पीछे से , मुस्काती फुलवारी ।।

कोमल स्पंदन मन चिर उन्मन

अलका 'कृष्णांशी'
दिल्ली

कोमल स्पंदन मन चिर उन्मन
रे स्याह भौंर गुंजन गुंजन
किसलय पुंजित ह्रदय हुलसित
उत्कंठा इंद्रजाल पुलकित
नित भोर भये चिर कोकिल–रव
मधु कुंज कुंज गुंजित कलरव
रे गंध युक्त मसिमय अंजन
रे स्याह भौंर गुंजन गुंजन
घनघोर घटा चितचोर विहग
नभ अंतःपुर ।ुतिमान सुभग
अकलुष प्रदीप्त कोमल उज्ज्वल
तप नेह वेदना में प्रतिपल
रे स्वर्ण स्वर्ण हो व्याकुल मन
रे स्याह भौंर गुंजन गुंजन
उन्मत्त भोर भीगी मुकुलित
उद्विग्न है संध्या तट कुसुमित
आसक्त मौन उत्कंठातुर
चल रे चल आतुर मन निष्ठुर
रे रीत मुक्त प्रीती बंधन
रे स्याह भौंर गुंजन गुंजन
कोमल स्पंदन औ चिर उन्मन
रे स्याह भौंर गुंजन गुंजन

अधजले ठूँठ

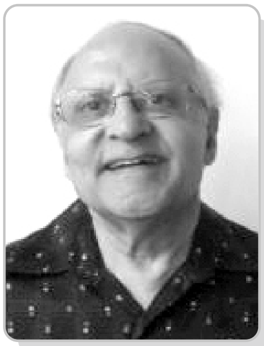

विजय निकोर

प्रतीक्षातुर पलों में, नींदों में
आर–पार जाती पारदर्शी सोच में
परस्पर आत्मीय पहचान
हम दोनों के ओंठ मुस्करा देते
हवा में आगामी प्रातों की ओस–सुगन्ध
हमारी बातों में कहीं 'न' नहीं थी
कभी कोई इनकार नहीं था, पुकार थी बस
धधकते हुए सूरज में प्रखर तेज था तब
उस प्रदीप्त धूप की छाती में
कुछ भसम करने की चाह नहीं थी
मैदानों को चीरती हवाओं में
थी रोम–रोम में उमंग
सूरज की उजाड़ किरणों में अब
अपने ही कंधों पर बोझ बने
स्नेह के पीले उतरे चेहरे में
खोजता फिरता हूँ अर्थ कहीं ...
कहाँ, क्यूँ और कैसे अचानक अनजाने
केवल हमारे रास्ते ही नहीं
तुम्हारे–मेरे शास्त्र, संबल–सिधांत हमारे
हो गए तार–तार सभी के सभी कुछ ऐसे
कि जैसे हमारे मजहब ही अब अलग हुए
पर मजहब तो प्रिय, विशाल–पर्वतों–से ऊँचे
युगानयुग से सनातन
हवाओं की
ओजार–सी तेज रफ्तार में भी
निर्बाध, निर्बंध, निश्छल
प्यार ही सिखाते हैं न
फिर अब सांवली दरारों में से
हाँफती यह उसाँस कैसी ?
कुचले हुए इरादों में अब
प्यार के वायदों की वारदातें
तुम्हारी साँसों की आवाजों में भी
कठिन कंटीले दुखों की कथाएँ
मौसम यहाँ कोई भी क्यूँ न हो
मैं आदतन, अब सिर्फ आदतन
मामूली सच्चाइयों में भी
कुरेदता हूँ फैले टूटे विश्वास के
दुरूखजनित आसमान को ...
जिन्दगी के जहरीले बुरादे में दबे पड़े हैं
हमारे प्यार के मजहब के अवशेष
अनगिनत अधजले ठूँठ

लिखावट

मनोज अहसास
सहारनपुर

तुम्हें मेरी लिखावट बहुत पसंद थी
और मुझे तुम्हारी
तुम अक्सर कहती
'जैसे घुमा घुमाकर लपेटकर तुम लिखते हो,
ऐसे ही मैं भी लिखना चाहता हूं'
मैं भी कई बार सोचता
'जैसे धीरे धीरे ,सोच सोचकर तुम लिखती हो ना
ऐसे ही मैं भी लिखना चाहता हूँ'

बहुत दिनों तक साथ साथ लिखते रहे
और देखते रहे
एक दूसरे की लिखावट को
और मेरी लिखावट मिल गई तुम्हारी लिखावट में
और तुम्हारी लिखावट मिल गई मेरी लिखावट में
एक नया लेख बना
जो न तुम्हारा था न मेरा
और हम दोनों का था।

फिर जुदा हो गए
लेकिन वो लिखावट मेरी उंगलियों में ही
रह गई शायद
बरसो तलक जब कभी लिखता
तुम्हारे साथ होने का अहसास होता
जैसे तुम पास ही हो
कई रास्ते तय किये
कितने लोग मिलें
कितनों के साथ बैठकर लिखा
और प्रभावित होने की मेरी कमजोरी से
बहुत से लोगों की लिखावट
के कुछ अक्षर मेरे लिखावट में आ गए
जैसे धुल गई हो उंगलिया
और दुनिया का रंग चढ़ गया हो इनपर।

लेकिन मैली हो चुकी इन अंगलियों से
अब भी जब कभी बहुत फुरसत में
कुछ गीत गजल लिखता हूँ
वो लिखावट कभी कभी उभर आती है
जिससे तुम्हारी मौजूदगी का अहसास होता था

अब........

कभी कभी तुम आ जाती हो
कभी कभी नही भी आती

तुम्हारे हृदय में ...

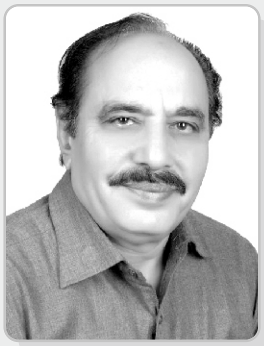

सुशील सरना
जयपुर

ये
समय ठहरा था
या कोई स्मृति
वाचाल बन
मेरी शेष श्वासों के साथ
चन्दन वन की गंघ सी
मुझे
कुछ पल और
जीवित रखने का
उपक्रम कर रही थी
ये
समय का कौन सा पहर था
मैं पूर्णतयः अनभिज्ञ था
अपनी क्लांत दृष्टि से
धुंधली होती छवियों में
स्वयं को समाहित कर
अपने अंत को
कुछ पल और
जीवित रखने का
असफल
प्रयास कर रहा था
शायद किसी के
इंतजार में
तुम
व्यर्थ ही
अनबिंधे मोती सी
मेरी श्वासमाल में
अंतिम छोर को ढके
मेरी चेतना के व्योम को
अपनी थपकियों से
अचेतन के भय से
मुक्त करने का
प्रयास कर रही हो
देखो
अब प्रकाश और
अन्धकार का भेद
धीरे धीरे
चेतना के साथ
शून्यता में लुप्त हो रहा है
महसूस कर रहा हूँ
तुम्हारी आंखों में
वेदना के सागर से गिरती
गर्म लावे की बूंदों को
जो अपने कपोलों पर
खारेपन को छोड़ती हुई
अतृप्त अनुभूति से
मेरी देह को सपन्दित
कर रही है
उदय और अस्त को
कब कोई रोक पाया है
मिटते ही
सायों के वजूद
अफसाने
अमर हो जाते हैं
लफ्ज
रूह बन जाते है
कहाँ मिटते हैं
मिट के भी
वो तो
वक्त के अधरों पे
सदियों के लिए
नग्मों के
खजाने बन जाते हैं
प्रिय
अब विलाप को
विश्राम दो
क्योंकि
अब
मेरा अंत
अंत नहीं
बल्कि
तुम्हारे हृदय में
कभी न अस्त होने वाला
आरम्भ बन जाएगा

क्या तुम सुन रहे हो ?

कल्पना भट्ट
भोपाल

फिर आ गयी है रात
पूनम के बाद की
खिला हुआ चाँद
कह रहा है कुछ
क्या तुम सुन रहे हो ?
तारों से कर रहें हैं बातें
तन्हा बीत जाती हैं रातें
देखता हैं यह चाँद यूँही
हँसता होगा यह भी देख मुझको
क्या तुम सुन रहे हो ?
साथ चलने को कहा था
थामकर हाथ चल रहे थे
फिर क्या हुआ यकायक
कैसे गरज गए यह बादल
क्या तुम सुन रहे हो
चमक रही है बिजली
चाँद भी अब चल देगा
बादलों के अँधेरे में
फिर होगी वर्षा लगता है
क्या तुम सुन रहे हो ?
पर नहीं ,
नहीं हो तुम आस पास कहीं भी
इतने शोर में भी खामोश है
दुनिया मेरी
क्या तुम सुन रहे हो ?

कुण्डलिया छंद

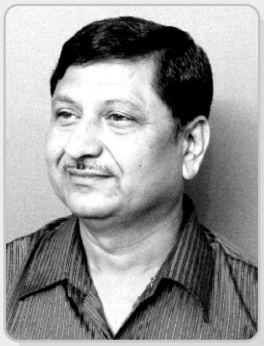

अरुण कुमार निगम
दुर्ग

पिसते हरदम ही रहे, मन में पाले टीस
तुझको भी मौका मिला, तू भी ले अब पीस
तू भी ले अब पीस , बना कर खा ले रोटी
हम चालों के बीच, सदा चौसर की गोटी
पूछ रहा विश्वास, कहाँ बदला है मौसम
घुन गेहूँ के साथ, रहे हैं पिसते हरदम ॥

❖ ❖ ❖

बिल्ली है सम्मुख खड़ी, घंटी बाँधे कौन
एक अदद इस प्रश्न पर, सारे चूहे मौन
सारे चूहे मौन, घंटियाँ शंख बजाते
मजबूरी में नित्य, आरती सारे गाते
लिया सभी ने जान, दूर काफी है दिल्ली
घंटी बाँध कौन, खड़ी सम्मुख है बिल्ली ॥

❖ ❖ ❖

मत अपना कर्तव्य है, मत अपना अधिकार
एक–एक मत से बनें , मनचाही सरकार
मनचाही सरकार, चुनें प्रत्याशी मन का
मन जिसका निष्पाप, चहेता हो जन–जन का
क्षणिक लाभ का लोभ, मिटा देता हर सपना
हो कर हम निर्भीक, हमेशा दें मत अपना ॥

❖ ❖ ❖

लोकतंत्र का पर्व यह, है हम सबकी शान
बिना किसी से भी डरे, करें सभी मतदान
करें सभी मतदान , देश को दें मजबूती
दुनियाँ भर में अरुण, बजे अपनी ही तूती
मिलजुल करिये जाप, हमेशा कर्म–मन्त्र का
है हम सबकी शान, पर्व यह लोकतंत्र का ॥

कामरूप छंद

अखिलेश कृष्ण
श्रीवास्तव

अंग्रेजियत का, दंभ भरते, क्या दिये संस्कार।
रावण बनें कुछ, कंस भी हैं, पूतना भरमार ॥

नारी सुरक्षा, देश रक्षा, विफल है सरकार।
हैं बलात्कारी, आततायी,   व्याप्त भ्रष्टाचार ॥

❖ ❖ ❖

नेता लफंगे, संग चमचे, जब पधारे गाँव।
वो गिड़गिड़ायें, वोट माँगें, पकड़ सब के पाँव ॥

जीते अगर तो, भूल से भी, दिखें न बदमाश।
मंत्री बने तो, देश का फिर, करें सत्यानाश ॥

'वीर चेतक'

आल्हा (वीर) छंद

सतविन्द्र कुमार
करनाल

घोड़े देखे बहुत जगत में,देखा कब चेतक–सा वीर
बिजली–सी चुस्ती थी जिसमें लेकिन रहता रण में धीर
कद था छोटा ही उसका पर,लम्बा उसका बहुत शरीर
मारवाड़ की अश्व–नस्ल में राणा ने पाया वह बीर
हल्दी घाटी समर क्षेत्र में,राणा उसपे रहे सवार
चेतक मुख पर सूंड लगाए,गज पर करता चढ़–चढ़ वार
राणा का भाला चलता था,संग चली टापों की मार
आगे–पीछे हटता चेतक,दिखती रण कौशल में धार
हल्दी घाटी का हर कोना, चेतक झट से देता नाप
अरिदल का हिय कम्पित करती,पल–भर में ही उसकी टाप
प्राण शत्रु सैनिक के हरता,दे जाता उसको संताप
जब दौड़ा अरिमुख होकर वह,दुश्मन मरता अपने आप
युद्ध क्षेत्र में घायल चेतक,राणा की खतरे में जान
रक्षा करने को गौरव की,बहुत जरूरी उनके प्राण
चेतक दौड़ा उनको लेकर,कर डाला दरिया तो पार
लेकिन धरती पर वह गिरकर,जीवन स्वयं गया था हार

डॉ. गोपाल नारायण श्रीवास्तव
लखनऊ

कुण्डलिया

हुलसी माँ की गोद में सुन्दर सुत अभिराम
जन्म समय जिसने किया उच्चारण श्री राम
उच्चारण श्री राम रामबोला कहलाया
सुख से था वैराग्य कष्ट जीवन भर पाया
कहते हैं 'गोपाल' बना तृण से वह तुलसी
जितना रहा अभाव भक्ति उतनी ही हुलसी

मनहर घनाक्षरी

किया रचना विचार भाषा में प्रथम बार
बह चली रस–धार भाव और भक्ति की
देख कविता का रंग विदुष समाज दंग
हुई जयकार फिर लोक भाषा शक्ति की
जीवन में राग नया राम अनुराग नया
प्रकट किये स्वरुप ब्रह्म अनुरक्ति की
मानस में तुलसी ने भरे सब भाव भीने
संत मत ,वेद तत्व कामना विरक्ति की

दोहावली

लक्ष्मण धामी

जित देखो उत खूब है चहुँदिश तरू की भीड़
नहीं सुरक्षित पर लगे क्या शीशम क्या चीड़

पहुँची मानव घर जहाँ दिखी धातु की बीड़
चिड़िया ने कुछ सोच तब वहीं बनाया नीड़

फिर सपना जीने लगी तन मन में भर ओज
चूजे जन्मे तो बढ़ी फिर से उसकी खोज

दूर–दूर जाने लगी चुग्गे को वह रोज
जिससे बच्चों को करा सके प्यार से भोज

चीं चीं कर कहते मगर बच्चे मन की चाह
आज लगी है मात कुछ हमको भूख अथाह

देगी दाना खोल मुख देखें माँ की राह
माता घर से दूर है नहीं जरा भी थाह

बाहर आँधी चील हैं भीतर मानव प्यार
यही सोच उसने रचा घर भीतर संसार

मानव को भी चाहिए उसको रखे दुलार
यही सोच खुद डाल दो अब दाने दो चार

मत्तगयंद सवैया

ज्योति जले घर–द्वार सजे सब, हैं उतरे वसुधा पर तारे।
आज बनी रजनी वधु सुंदर ज्यों पहने मणि के पट प्यारे।।
थाल लिए जुगनू सम दीपक, नाच रहे खुश हो जन सारे।
आश–दिये हरते उर से तम, भाग रहे डर के अँधियारे।।1।।

किरीट सवैया

कोटिक दीप जले वसुधा पर, है कितना यह दृश्य सुहावन।
झूम रहे नव आश भरे उर, पूज रहे मिल आज सभी जन।।
ज्योति जलाकर स्वागत में तव राह निहार रहे सबके मन।
हे! कमला गणनायक के सँग, आज पधार करें गृह पावन।।2।।

मदिरा सवैया

चैन लुटा जब नैन मिले तन औ मन की सुध भी न रही।
कोमल भाव जगे उर मेंशुचि–शीतल–स्नेह–बयार बही।।
मौन रहे मुख नैनन नेप्रिय से मन की हर बात कही।
चंद्र निहारत रैन कटें, मन की अब पीर न जाय सही।।

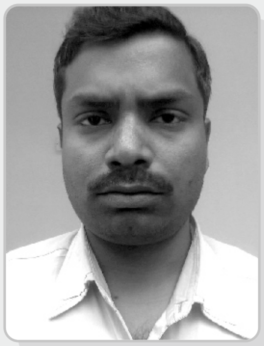

रामबली गुप्ता

कहमुकरी

योगराज प्रभाकर
प्रधान संपादक

अंबर बौना उसके आगे
सागर उथला उसको लागे
रहबर, शाकिर, साबिर, दिलबर
ऐ सखि साजन ? न सखी शायर

लिपट लिपट पाँवों को चूमे
छूने भर से तनमन झूमे
चंचल चपल निरंकुश पागल
ऐ सखि साजन ? न सखी पायल

सीने में बारूद छुपाये
धधके जब कोई भड़काये
लेवे फिर ना शोले वापिस
ऐ सखि साजन ? न सखी माचिस

छेड़छाड़ करने की आदत
बरजोरी की करता जुरअत
हाथ जोड़ भी नहीं पसीजा
ऐ सखि साजन ? न सखी जीजा

डॉ. प्राची सिंह
हल्द्वानी

दृढ़ निश्चय की ओढ़े चद्दर
गढ़ते अपना स्वयं मुकद्दर
हमदम मेरे, बिलकुल अपने
ऐ सखि साजन? ना सखि सपने

तन्हा देख मुझे वो घेरें
लाख चिढ़ूं पर मुख ना फेरें
मंद–मंद दिल में मुस्का दें
ऐ सखि साजन? ना सखि यादें

भाग्यवान जो उनको पाया
शब्द–शब्द उनका अपनाया
तप्त मरू में शीतल तरुवर
ऐ सखि साजन? न सखि गुरुवर

रंग रूप फूलों सा पाया
पर जालिम नें बहुत सताया
उससे खुदा बचाए दैया
क्या सखि साजन? नहिं ततैया

ज्योतिर्मय पन्त

रातों को वह सदा जगाता
कभी कान में कुछ कह जाता
साँझ पड़े वो आता अक्सर
क्या सखि साजन? ना वो मच्छर

धीरे से मुखड़ा सहलाये
चुनरी और लटें उलझाये
छूकर शीतल कर दे तन –मन
क्या सखि साजन? नहीं वो पवन

गालों को जब मर्जी चूमे
मस्ती में हरदम वह झूमे
रुचता जैसे उसको ठुमका
क्या सखि साजन? नहिं री झुमका

इंतजार हर रात उसी का
और न रहता ध्यान किसी का
सुख सपनों की एक उम्मीद
क्या सखि साजन? नहीं री नींद

सौरभ पांडे
इलाहाबाद

उसके कारण तन–मन गद्–गद्
विस्तृत उर का धर्म–विषारद
उसके प्रति मनभाव विशेष
क्या सखि साजन ? ना सखि देश !

छन में तोला छन में माशा
किन्तु बँधी उससे ही आशा
भरूँ उसीके कारण मैं दम
क्या सखि साजन ? ना सखि मौसम

रौद्र सूर्य की कांति प्रखर में
ओजपूर्ण है तेजस स्वर में
होती तेवर में कुछ नर्मी
क्या सखि साजन ? ना सखि गर्मी

राजेश कुमारी
देहरादून

उसके बिन मैं रह ना पाऊँ
साथ चले जब बाहर जाऊँ
बिन उसके ये जीवन कैसा
क्या सखि साजन? ना सखि पैसा

हर पल उसके साथ बिताऊँ
ना देखूं तो चौन न पाऊँ
मिलकर चुमूँ उसका मस्तक
क्या सखि साजन? ना सखि पुस्तक

घर आँगन को जो महकाए
साँस–साँस में घुल–मिल जाए
कली–कली मन ही मन हुलसी
क्या सखि साजन?ना सखि तुलसी

हवा चले मस्ती में आये
तन से मेरे चिपटा जाये
कंठ लिपटता बनके पट्टा
क्या सखि साजन ?नहीं दुपट्टा

कहमुकरी

स्व. संजय मिश्र हबीब

भोर दोपहर साँझ बुलाये
मुझको छप्पन भोग खिलाये
रखती उसको जैसे दूल्हा
क्या सखि साजन? ना सखि चूल्हा

गोदी में सिर रख सो जाऊँ
कभी रात भर संग बतियाऊँ
रस्ता मेरा देखे दिन भर
क्या सखि साजन? ना सखि बिस्तर

खोज खबर दुनिया की लाता
जब मैं कह दूँ गीत सुनाता
सबसे मेरा वही करीबी
क्या सखि साजन? ना सखि टीवी

मीठी करता रहता बातें
उसके बिन तपती हैं रातें
तन मन शीतल करता छूकर
क्या सखि साजन? ना सखि कूलर

अरुण शर्मा 'अनंत'

करुणा का सागर लहराता
नतमस्तक हों स्वयं विधाता
दुर्लभ है परिभाषा लिखनी
क्या सखि साजन ? न सखि जननी

सागर से ज्यादा गहराई
कितनी दुनिया भांप न पाई
अधिक विधाता से है क्षमता
क्या सखि साजन ? न सखि ममता

बिन बोले हर बात समझता
सुख दुख का वो कर्ता धर्ता
प्रातः संध्या और दोपहर
क्या सखि साजन ? न सखि ईश्वर

जीवन खातिर बहुत जरुरी
उससे सही न जाये दूरी
उसकी आवश्यकता प्रतिपल
क्या सखि साजन ? न सखि जल

संजय देव

मीठी मीठी बात बनाता
स्वपन लोक की सैर कराता
बातों से मन को हर लेता
ऐ सखी साजन ? न सखी नेता

दिन भर रहता जो मंडराता
गुनगुन गुनगुन गीत सुनाता
ना ये तोरा ना ये मोरा
ऐ सखि साजन ? न सखी भौंरा

छवि मोहिनी मन भरमाता
रास रचौय्या रास रचाता
चंचल मन को वश कर लेता
ऐ सखि साजन ? न सखि अभिनेता

रीत प्रेम की सदा निभाता
मधुर मिलन को जान लुटाता
प्रेम रंग मैं जो है रंगा
ऐ सखि साजन ? न सखि पतंगा

अजीत शर्मा 'आकाश'

इलाहाबाद

हरदम पैरों में रहता है
सारा दिन बोझा सहता है
उसको त्यागे, किसका बूता
क्या सखि साजन ? ना सखि, जूता

तिकड़म से हर काम बनाये
छल –प्रपंच कर खूब कमाये
दिन भर आश्वासन ही देता
क्या सखि साजन ? ना सखि, नेता

ठीक समय पर घर आ जाये
नयी– नयी नित खबर सुनाये
जोड़े दुनिया भर से तार
क्या सखि साजन ? ना, अखबार

दुनिया भर से बात कराये
फोटो खींचे , गीत सुनाये
अजब–गजब उसकी स्टाइल
क्या सखि साजन ?
ना, मोबाइल

उछल–कूद में सबसे आगे
शैतानी कर–कर के भागे
बड़ी अक्ल है उसके अन्दर
क्या सखि साजन ?
ना सखि, बन्दर

अशोक कुमार रक्ताले

हरदम उनके दिल में रहती
बिन उनके तो अँखियाँ बहती
प्यार करें ज्यों खोये आपा
क्या सखि साजन ? ना सखि पापा

मुख चूमें तो मैं इतराऊँ
दिल की सारी उन्हें बताऊँ
मन्दिर मस्जिद वो ही काबा
क्या सखि साजन ? ना सखि बाबा

मुझसे सह ना पाएं दूरी
ख्वाहिश भी हर करते पूरी
हरदम मेरी खातिर रैडी
क्या सखि साजन ? ना सखि डैडी

छन्न पकैया

अविनाश बागड़े

छन्न पकैया छन्न पकैया, पढ़ते दांत पहाडा।
खड़ा हुआ है सर के ऊपर, डंडा लेकर जाड़ा॥

छन्न पकैया छन्न पकैया, पार तभी हो नाव।
सर्द हवा के बीच रात में, जलता रहे अलाव॥

छन्न पकैया छन्न पकैया, ठिठुर रहें फुटपाथ।
काली कुतिया साथ ठिठुरती, सोती है जो साथ॥

छन्न पकैया छन्न पकैया, नहीं गल रही दाल।
शीत युद्ध के चलते पहनो, स्वेटर मफलर शाल॥

छन्न पकैया छन्न पकैया, सड़कें हैं सुनसान।
ऊपर वाले का कर्फ्यू है, लो अच्छे से जान॥

छन्न पकैया छन्न पकैया, कहता है अविनाश।
कोहरा इतना गहरा है कि, दिखे नहीं आकाश॥

❖ ❖ ❖

गिरिराज भंडारी

छन्न पकैया छन्न पकैया, होली फिर से आई
बूढ़े बाबा की भी देखो, जागी है तरुणाई

छन्न पकैया छन्न पकैया, रंग प्यार का लेके
लूले लंगड़े भी दौड़े जो, चलते हैं ले दे के

छन्न पकैया छन्न पकैया, होली बड़ी निराली
कौवा रंग लगा के पूछे, कैसी लगती लाली

छन्न पकैया छन्न पकैया, आ जा भंग चढ़ायें
फिर बैठे बैठे घर में ही, आसमान तक जायें

छन्न पकैया छन्न पकैया, सूना सूना लागे
जिनके मित्र हुये परदेशी, लगते मुझे अभागे

छन्न पकैया छन्न पकैया, सारे बंधन तोड़ो
मन कहता है आज न रोको, मुझको खुल्ला छोड़ो

छन्न पकैया छन्न पकैया, होगी छेड़ा छाड़ी
हुड़दंगी की टोली आई, रंगों की ले गाड़ी

सत्यनारायण सिंह

छन्न पकैया छन्न पकैया, ऋतु गर्मी की आई।
आँधी धूल उडाते चलती, बहे गर्म लू भाई।१।

छन्न पकैया छन्न पकैया, नीम सिरिष हैं फूले।
हवा सुगंध बिखेरे उनकी, खुशबू से मन झूले।२।

छन्न पकैया छन्न पकैया,जुगनू चमचम चमके।
सूखी नदियाँ रेत तलैया, पानी जैसे झलके।३।

छन्न पकैया छन्न पकैया, आँखें धूप में चौंधे।
लाल पुष्प से पुष्पित सज्जित, गुलमोहर के पौधे।४।

छन्न पकैया छन्न पकैया, खायें मठ्ठा रोटी।
गर्मी के दिन लम्बे होते, रातें होती छोटी।५।

छन्न पकैया छन्न पकैया, चलते कूलर पंखे।
बिजली की जब हुई कटौती, अब काहे को झंखे।६।

छन्न पकैया छन्न पकैया, ककड़ी खीरे भायें।
लीची बेल फालसा खायें, गर्मी दूर भगायें।७।

छन्न पकैया छन्न पकैया, गर्मी के दिन आये।
शरबत लस्सी कुल्फी ठंडा, सबका मन ललचाये।८।

छन्न पकैया छन्न पकैया,गर्मी लगे उबाऊ।
जगह जगह पर दिखते है अब, शीतल जल के प्याऊ।९।

छन्न पकैया छन्न पकैया,गर्मी खुशियाँ लाती।
बंद हो गए विद्यालय अब, नहीं पढ़ाई भाती।१०।

छन्न पकैया

अरुण श्री

छन्न पकैया छन्न पकैया सबकी है मत मारी
सर को पकड़े बैठ गए सुन बेटी की किलकारी

छन्न पकैया छन्न पकैया छीना है हर मौका
छोड़ पढाई नन्ही बेटी, करती चूल्हा चौंका

छन्न पकैया छन्न पकैया जीवन भर भरमाए
और पराया धन कह कर उसको परदेश पठाए

छन्न पकैया छन्न पकैया छोड़ा पी का आंगन
नई बहुरिया नव आंगन में ढूंढ रही अपनापन

छन्न पकैया छन्न पकैया सोच सोच मुरझाई
उसे छोड़ के देख रहे सब क्या दहेज में लाई

छन्न पकैया छन्न पकैया जिसको अपना माना
उसी पिया के आंगन देखो मिलता नही ठिकाना

छन्न पकैया छन्न पकैया वो दिन सबसे काला
जब अपनों ने ही उसको दे दी दहेज की ज्वाला

छन्न पकैया छन्न पकैया जग आधार बनेगी
इसे संभालो ये ही हमारा नया भविष्य जनेगी

छन्न पकैया छन्न पकैया ये समाज अब जागे
माँ न रहेगी कुछ न रहेगा ये मत भूल अभागे

छन्न पकैया छन्न पकैया आओ मिल के ठाने
बेटी भी हिस्सा गुलशन का उसको अपना माने

कल्पना भट्ट
भोपाल

छन्न पकैया छन्न पकैया,नारी लागे भोली
नीली पीली चूनर ओढ़े, खेल रही है होली

छन्न पकैया छन्न पकैया,भीग गई है चोली
रंगों की मस्ती में झूमे,नाचे कूदे टोली

छन्न पकैया छन्न पकैया,आ जाओ हमजोली
टेसू के रंगों में डूबें, आओ खेलें होली

छन्न पकैया छन्न पकैया,अलबेलों की टोली
घोटी भांग सभी ने मिलकर,पी कर खेलें होली

छन्न पकैया छन्न पकैया,ऐसी होती होली
रिश्तों की डोरी में बांधे, हम सबको हमजोली

तसदीक अ. खान
अजमेर

छन्न पकैया छन्न पकैया ,दौर खिजाँ का आया
पत्ते गिरने लगे जमीं पर ,गयी पेड़ की छाया

छन्न पकैया छन्न पकैया ,केसा है यह मंजर
एक पेड़ है उजड़ा उजड़ा ,फूल खिले दूजे पर

छन्न पकैया छन्न पकैया ,रुत बसंत की आई
कहीं खिले हैं फूल कही पर,वीरानी है छाई

छन्न पकैया छन्न पकैया ,आओ पेड़ लगाएँ
उजड़ न जाए अपनी धरती ,मिल कर इसे बचाएँ

छन्न पकैया छन्न पकैया ,हर कोई तरसेगा
पेड़ लगेंगे जब धरती पर ,तब पानी बरसेगा

छन्न पकैया छन्न पकैया ,उनकी याद सताए
फूल आगये हैं पेड़ों पर ,लेकिन सनम न आए

शशि पुरवार

छन्न पकैया छन्न पकैया ,छंदो का क्या कहना
एक है हीरा दूजा मोती, बने कलम का गहना

छन्न पकैया छन्न पकैया ,राग हुआ है कैसा
प्रेम रंग की होली खेलो ,दोन टके का पैसा

छन्न पकैया छन्न पकैया ,रंग भरी पिचकारी
बुरा न मानो होली है ,कह ,खेले दुनिया सारी

छन्न पकैया छन्न पकैया , होली खूब मनाये
बीती बाते बिसरा दे ,तो , प्रेम नीति अपनाये

छन्न पकैया छन्न पकैया ,दुनिया है सतरंगी
क्या झूठा है क्या सच्चा है, मुखड़े है दो रंगी

छन्न पकैया छन्न पकैया , बजे हाथ से ताली
छेड़े जीजा साली भागे , हो आधी घरवाली .

छन्न पकैया छन्न पकैया , सासू जी मुस्कायी
देवर – भाभी होली खेले , सैयां पे बन आयी।

ग़ज़ल की लोकप्रियता तथा भारतीय परिवेश में ग़ज़ल और भाषा का इतिहास

– वीनस केसरी

ग़ज़ल वह लफ्ज है जो कानों में पड़ते ही शहद का अहसास करवा सकता है, तो नश्तर सा दिल में चुभ भी सकता है, कभी स्वेटर की नई डिज़ाइन सा खूबसूरत, कच्ची नींद के ख्वाब सा नाजुक, बच्चे के लिए चंदा मामा सा और इश्क सा पाक जज़्बा होता है, तो कभी बेवा की टूटी चूडियों सा, भूखे के लिए रोटी सा और मक्तल में चिंगारियां उडाती तलवार के जैसा हो जाता है।

ग़ज़ल काव्य की वह विधा है जिसने भारत में ६०० – १००० वर्षों का लंबा सफर तय किया है और यह सफर पूरी आन बान और शान के साथ जारी है इस सफर में अनेक उतार चढ़ाव आए, भाषागत बड़े बदलाव हुए, ग़ज़ल ने नई भाषाओं को जन्म देने जैसा महान कार्य किया तो भाषाओं को बचाए रखने का बीड़ा भी उठाया। इस लंबे सफर के दौरान ग़ज़ल ने दरबारों को सजते भी देख लिया और उजड़ते भी, मुगलों को स्वागत भी किया और आखिरी मुगल शासक की रूदाद का जरिया भी बनी। अंग्रेजों को आते, पाँव जमाते देखा तो उनका वह रूप भी देखा जिसमें इंसान–इंसान पर इस कदर हावी हो जाता है कि सब्र की इन्तेहाँ हो जाए। क्रांतिकारियों की आवाज़ बनी तो संतों की जुबान भी, माँ की मीठी लोरी बनी तो आशिक की कहानी भी। जिसने इसे सर माथे लगया इसने उसे मालामाल कर दिया, इसने आशिक के गले से दर्द का पुरकशिश सागर छलकाया जिससे माशूक दीवानगी में अपने होश हो बैठा तो सितमकश का बयान भी बनी जिसके अशआर ने सितमगर के जेह्न पर असर किया

इन सभी रंगों को समेटे हुए ग़ज़ल वो नाजुक सिन्फ है जिसका असली हुनर तब नुमायाँ होता है जब इसके अशआर में वो अर्थ भी निकलने लगते हैं जिनका मिसरैन में जिक्र ही न किया गया हो, इस हवाले से फैज साहिब का यह शेश्र कैसा मौजूँ हो गया है

वो बात सारे फसाने में जिसका जिक्र न था.
वो बात उनको बहुत नागवार गुजरी है

शाइरी का यह हुनर हर किसी को नसीब नहीं होता और जिसे हो जाता है वो मीर तकी मीर, मिर्ज़ा गालिब, मिर्ज़ा दाग और फैज़ अहमद फैज़ हो जाते है, बल्कि इससे भी बढ़ कर ग़ज़ल की राह पर चलने वाले ऐसे लोगों को ग़ज़ल खुद राहबर चुन लेती है और ये लोग ग़ज़ल की राह को और सुन्दर, सरल और सहज करते चलते है और संवरने के जुनून में संवारने का काम भी होता जाता है जिसे सोच विचार कर अंजाम तक नहीं पहुँचाया जा सकता। इन ८०० वर्षों में ग़ज़ल को चुनने वालों की तादात लाखों करोड़ों रही, मगर ग़ज़ल ने जिनको चुना वो ग़ज़ल के इस सफर में वक्त के पहिये पर ऐसी कील बने जिन्होंने इस रथ को और मजबूत तो किया ही खूबसूरती भी बख्शी

ग़ज़ल पानी के जैसी रंगहीन है मगर इसमें आश्चर्यचकित करने वाली बात तो यह है कि ज़रा सा गहरे उतारते ही इसमें हर वो रंग मौजूद है जो जिंदगी से सीधे जुड़ा है जरूर यह शे'र ग़ज़ल के लिए कहा जा सकता है –

कहानी मेरी रुदादे जहाँ मालूम होती है
जो सुनता है उसी की दासतां मालूम होती है

और शायद इस विधा के इतने रंगों का ही कमाल है इसमें हर इंसान अपनी जिंदगी से वाबस्ता रंग ढूँढ लेता है और ग़ज़ल उसके दिल की गहराईयों में बस जाती है और दीवान के पन्नों तक न सिमट कर लोक को प्रिय होती है

अदबी तारीख के माथे की बिंदी ग़ज़ल ने अरबी फारसी से होते हुए नई ज़बान के पैमाने गढ़ें, रेख्ता में ढली आगे बढ़ कर उर्दू का रंग भी अख्तियार किया समय के साथ हिन्दी का चोला पहना तो अब उससे आगे बढ़ कर नेपाली, मराठी, गुजराती, अवधी, मागधी, भोजपुरी भाषाओं/बोलियों और इनको बोलने वालों के दिलों पर भी अपना साम्राज्य स्थापित कर रही है, और अंग्रेजी, सहित अनेक भषाओं तक पहुँच बना रही है यह इसकी लोकप्रियता का सुबूत ही तो है

भारत को ग़ज़ल विधा ईरान की देन है आठवीं शताब्दी में ओमान में जन्मे अब्दुर्रहमान खलील बिन अहमद बसरी फरहूदी (खलील बिन अहमद) को अरूज (ग़ज़ल छंद शास्त्र) का आविष्कारक माना जाता है आपने दो महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी १. इल्म –ए– अरूज (अरूज शास्त्र) २. किताबुल–ऐन (अरबी शब्द कोष)। ऐसा माना जाता है कि इल्म –ए– अरूज लिखते समय आपने पिंगल शास्त्र से विशेष सहायता प्राप्त की थी क्योंकि दोनों की मूल इकाईयों तथा बहुत से छंदों में समानता पाई गयी है। मगर अरबी शाइरी की परम्परा आठवीं शताब्दी से अधिक पुरानी है और इसकी जाँच–पड़ताल करते हुए जनाब अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने महत्वपूर्ण लेख में कहते हैं –

कसीदे मे जब प्रेम का प्रवेश हुआ तो ग़ज़ल का जन्म हुआ और इसका श्रेय जाता है इमरकैस (५३६ ई) अरबी साहित्य के विशेषज्ञो का मानना है कि इमरउल कैस जमाना – ए जाहिलियरू का पहला शाइर है जिसने ग़ज़ल कही ।

– नया ज्ञानोदय जनवरी 2013

खलील बिन अहमद के समय से पहले अरबी काव्य का प्रारूप कैसा था इस बारे में जनाब अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने लेख में अच्छी जानकारी उपलब्ध करवाई है। ऐसा माना जाता है कि खलील बिन अहमद ने जब अपने अथक परिश्रम से अरूज का आविष्कार किया तो अरबी तथा फारसी साहित्य में इन्कलाब आ गया। ग़ज़ल के बारे में सामान्यतः सर्वमान्य है कि यह कसीदा से निकली है, कसीदा लेखन का आरम्भ अरब में हुआ अरबी कसीदानिगारी में सामान्यतः नायक नायिका और प्रकृति का वर्णन होता था तथा इसे कबीले के सरदार को खुश करने तथा तारीफ करने के लिए भी लिखा जाता था कसीदे का

फारसीकरण हुआ तो कसीदे का यही रूप अरबी से फारसी में आया परन्तु अरब और फारस के समाज में पर्याप्त अंतर था फारस में अधिकतर कसीदानिगार राजदरबार में शाइरी करते थे और राजदरबार आश्रित होते थे इसलिए बादशाह को खुश करके अधिक से अधिक ईनाम प्राप्त करने के लिए कसीदानिगारों ने खूब कसीदे लिखे। जिसमें अधिकतर शाइर बादशाह की झूठी तारीफ के पुल बाँध देते थे। (कसीदा से मिलती जुलती काव्य विधा भारत में भी प्रसिद्ध थी जिसे 'रासो काव्य' कहा जाता था चंदबारदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' आदिकाव्य का एक प्रमुख ग्रन्थ है)। फारसीकरण होने के पश्चात कसीदा का स्वरूप तेजी से बदला अब कसीदा के पहले खंड तशबीब में जो भूमिका बांधी जाती थी उसमें बादशाह के सुख वैभव आदि का वर्णन किया जाने लगा, इस प्रथम खंड तशबीब में शृंगारिक पहलू भी होता था माना जाता है कि ईरान के शुअरा ने कसीदा के पहले खंड तश्बीब में से शृंगारिक पहलू को अलग करके शृंगारिक शाइरी करने लगे और इसका नाम ग़ज़ल रखा।

हिन्दी तथा उर्दू को ग़ज़ल विधा फारसी की देन है परन्तु 'हिन्दी ग़ज़ल' प्रथम सोपान में प्रचिलित नहीं हुई और हिन्दी तक पुनः पहुँचने से पूर्व ग़ज़ल ने उर्दू के साथ एक लंबा सफर तय किया है इसलिए यह कहना भी उचित ही है कि हिन्दी को ग़ज़ल विधा उर्दू से तथा उर्दू को फारसी से प्राप्त हुई है। यदि भारत में ग़ज़ल के इतिहास को जानने की कोशिश की जाए तो यह आवश्यक है कि हम उर्दू तथा हिन्दी के इतिहास से पूर्व परिचित हों, भारतीय साहित्यिक परिवेश में ग़ज़ल विधा उर्दू से इस प्रकार समायोजित हो चुकी है कि उर्दू और हिन्दी के इतिहास को जाने बिना ग़ज़ल के इतिहास को समझ लेना चुनौतीपूर्ण होगा। अतः आवश्यक है कि हम ग़ज़ल के साथ साथ उर्दू और हिन्दी के इतिहास से भी साथ साथ परिचित होते चलें।

भारतीय इतिहास के पन्नों को पलटें तो यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आता है कि जब भी इस देश में धार्मिक या राजनीतिक परिवर्तन हुए हैं तो यहाँ की भाषाओं बोलियों तथा साहित्य के स्वरुप में परिवर्तन हुआ है । ५००० ई. पू भारत में आर्य भाषाओं के उद्भव के पूर्व द्रविड भाषाएं तथा द्रविड सभ्यता अपने उत्कर्ष पर थीं आर्यों के भारत आगमन के साथ ही आर्य भाषा 'छन्दस' उत्तर भारतीय क्षेत्र में फैल गयी। छन्दस भाषा में ही आर्यों ने वेद और उपनिषद कि रचना की है। प्रत्येक युग में एक साहित्यिक भाषा होती है और इसके समानांतर अनेक जन भाषाएँ बोली के रूप में जीवित रहती हैं। यही जन भाषाएँ उस साहित्यिक भाषा को नया जीवन प्रदान कर विकसित करती रहती हैं। भाषा नदी के जल की तरह प्रवाहमान होती है और इसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है जब जन भाषाओं तथा बोलियों को साहित्यिक रूप देकर उसके परिवर्तन को व्याकरण निर्माण के बाँध द्वारा रोकने की कोशिश की जाती है तो कुछ पानी तो साहित्यिक रूप में रुक जाता है परन्तु जन भाषा तथा बोली के रूप में उस बाँध से एक नई धारा फूटती है और वह धारा आगे एक नई नदी का रूप ले लेती है। आर्यों ने जब अपनी भाषा छान्दस में वेद उपनिषद आदि का निर्माण किया तो उसे व्याकरण से बाँध दिया और परिणाम स्वरूप छान्दस ने तत्कालीन देशी भाषा से शक्ति अर्जित करके संस्कृत का रूप लिया तथा १५०० ई.पू. के आसपास संस्कृत बोली से जन भाषा के रूप में परिवर्तित हो गयी इसी प्रकार ७०० – ८०० वर्ष के लंबे अंतराल में संस्कृत का व्याकरण निर्मित हुआ और फिर से देशज बदलाव हुए और उस देशज भाषा के मिश्रण से ८००–७०० ई.पू. पालि तथा प्राकृत का जन्म हुआ अब तक संस्कृत साहित्यिक भाषा का दर्जा प्राप्त कर चुकी थी तथा समस्त धार्मिक ग्रन्थ तथा काव्य आदि की भाषा संस्कृत ही थी। लगभग ६०० ईसा पूर्व के आते आते प्राकृत भाषा बोल चाल की भाषा बन गयी, इस समय ही भारत में जैन तथा बौद्ध धर्म फैले, गौतम बुद्ध तथा महावीर जैन ने जनसाधारण की भाषा प्राकृत तथा पालि को ही उपदेश देने के लिए श्रेयस्कर समझा, इस महत्वपूर्ण निर्णय का परिणाम यह हुआ कि संस्कृत के साथ साथ प्राकृत भाषाएँ भी श्रेष्ठ भाषा के रूप में स्वीकार्य होने लगी तथा संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा, पालि तथा प्राकृतों का प्रयोग जैन तथा बौद्ध साहित्य में खूब होने लगा। छन्दस, संस्कृत, पालि तथा प्राकृत भाषाओँ की प्रकृति एक दूसरे से निकट रही है अर्थात छन्दस से संस्कृत के बदलाव में कुछ कठिन शब्दों का स्थान सरल तद्भव शब्दों ने ले लिया इस प्रकार संस्कृत से पालि तथा प्राकृत तक यह बदलाव होता रहा तथा नई भाषा में कठिन तथा कम प्रचिलित शब्द खत्म होते गए तथा उनके स्थान पर भाषा में सरल तथा तद्भव के शब्द आ गए। चंद्रधर शर्मा गुलेरी इसका स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं –

'वेद में देवाः और देवासः दोनों शब्द हैं संस्कृत में केवल देवाः रह गया और प्राकृत आदि में आसस् दोहरे जस् का वंश आओ आदि में चला'

– (पुरानी हिन्दी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी पृष्ठ २)

प्राकृत भाषा में सृजित जैन तथा बौद्ध साहित्य, धर्म प्रचारकों के साथ सुदूर देशों तक गया तथा इस प्रकार प्राकृत और पालि भाषा का भी क्षेत्र विस्तार हुआ। इस दौरान प्राकृत भाषा पालि भाषा से अधिक प्रचिलित हुई तथा प्राकृत ने धीरे धीरे पालि का प्रभाव कम किया और पालि का उपयोग ई.पू. ही समाप्त होता गया। परन्तु प्राकृत भाषा ५०० द ६०० ई. तक सर्वमान्य रही। बौद्ध और जैन धर्मावलंबियों की कृपा दृष्टि के चलते इस समय तक संस्कृत के साथ साथ प्राकृत भी साहित्यिक भाषा बन गयी। भारतीय आर्य भाषा के विकास क्रम में अपभ्रंश प्राकृत के बाद की अवस्था है इस भाषा का उदय ५००–६०० ई. में प्राकृत भाषा से हुआ तथा इस भाषा में ८०० ई. से १४०० ई. तक साहित्य का सृजन हुआ। यह मध्य भारतीय आर्यभाषा की अंतिम कड़ी और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की जननी है

अपभ्रंश का अर्थ है भ्रष्ट, विकृत अथवा अशुद्ध। इस नाम का प्रयोग पहले पहल उन शब्दों के लिए होता था जो भाषा के सामान्य मानदंड से गिरा होता था। धीरे धीरे इस नाम का अर्थ विस्तार हुआ और यह शब्द भाषा विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगा।

जिस समय ८वीं – ९वीं शताब्दी में अपभ्रंश साहित्यिक भाषा के रूप में सामने आ रही थी उस समय के पाल और राष्ट्रकूट राजाओं ने अपभ्रंश के कवियों को संरक्षण दिया और राष्ट्रकूट वंश के बाद चालुक्यों ने भी अपभ्रंश काव्य को प्रोत्साहित किया।

१००० ई. आते आते बंगाल से ले कर मुल्तान प्रदेश तक अपभ्रंश में काव्य का सृजन किया जा रहा था स्थानीय बोली के प्रभाव के कारण अपभ्रंश काव्य में भी कई प्रकार देखने को मिलते हैं सदूर दक्षिण को छोड़ कर समस्त भारत में इस काल में अपभ्रंश काव्य की रचना हुई

तथा सैकड़ों छन्दों का आविष्कार किया गया जो आज भी प्रचिलित हैं जिनमें दोहा, सोरठा, चौपाई आदि आज भी प्रासंगिक हैंद्य

अपभ्रंश का सर्वमान्य रूप ही कालान्तर में उन प्रदेशों में प्रचिलित हुआ जो आज खड़ी बोली के क्षेत्र हैं जैसे सिंधी, गुजराती, पंजाबी, ब्रज, अवधी, आदि। अपभ्रंश के तीन प्रकार थे १. नागर २. ब्राचड ३. उपनागर अपभ्रंश में कई बड़े कवियों ने खूब काव्य रचा जिनमें स्वयंभू, पुष्पदंत, हेमचन्द्र, अद्दहमाण आदि प्रमुख हैं ।

जिस समय भारत में अपभ्रंश में से नवीन आर्य भाषा सिंधी, गुजराती, पंजाबी, ब्रज, अवधी, आदि का जन्म हो रहा था उस समय ही भाषा के क्षेत्र में एक और महत्त्व पूर्ण परिवर्तन १००० ई. के आसपास प्रारम्भ हुआ जब इस्लाम धर्मावलंबी बड़ी संख्या में भारत आये। बड़ी संख्या में मुसलमानों के भारत आगमन से उनकी बोली का यहाँ की बोलियों पर तेजी से प्रभाव पडने लगा। इनकी बोलचाल की भाषा तुर्की थी और राजकीय भाषा फारसी, जो स्वयं अत्यंत समृद्ध आर्य भाषा है। मुसलमान सबसे पहले पंजाब में बसे इस कारण सबसे पहले वहाँ पर ही अरबी फारसी तुर्की और भारतीय भाषाओं को संगम होना शुरू हुआ। इस काल को हिंदी का आदि काल (१००० ई से १४०० ई) माना गया है

बारहवीं शताब्दी आते आते भारतीय भाषाओँ में कई बड़े बदलाव हो चुके थे । वस्तुतः हिन्दी साहित्य की विभिन्न प्रवित्तियों की शुरुआत इस समय ही हुई तथा विकास परावर्ती काल में हुआ। इस समय आदि कालीन हिन्दी काव्य का सृजन शुरु हुआ जिसमें कवि चन्दवरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' (अनुमानतः ११४५ ई.), कवि नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो (११५५ ई.) ''ढोल मारू रा दूहा'' तथा विद्यापति व अमीर खुसरो की कविता का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान है। परन्तु राजभाषा फरसी होने के कारण भारतीय भाषाओं को राजकीय संरक्षण प्राप्त न हो सका जिससे इसकी विकास यात्रा रुक सी गईद्य १०००–११०० ई. के आस पास इन प्रारंभिक हिन्दुस्तानी भाषा का विकास उत्तरी भारत में हुआ तथा अपभ्रंश भाषा में एक नवीन रूप झलकने लगा इस समय की आर्य भाषा को चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने 'पुरानी हिन्दी' कहा है। इस नवीन भाषा में भी काव्य का सृजन होने लगा जिसमें मूल भाषा अपभ्रंश थी तथा प्रादेशिक बोली व अन्य भाषा के बोलचाल के शब्द भी समाहित होते रहे। १२वी शताब्दी की अपभ्रंश काव्य भाषा, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषा की ड्योढी पर खड़ी है एक तरफ उस पर अपभ्रंश का प्रभाव है दूसरी तरफ तद्भव शब्दों के योग की प्रवित्ति बढ़ रही है इसके अतिरिक्त स्थानीय बोलचाल की मिश्रित भाषा भी अपना योगदान देती रही

इस समय तक फारस के देशों में ग़ज़ल राज दरबार की सामग्री बन चुकी थी तथा ग़ज़लगो और कसीदानिगारों को राजदरबार में विशेष सम्मान और पद प्राप्त होता था, इन सम्मान और पद को प्राप्त करने के लिए अनेक सुखनवर हिन्दुस्तान का रुख भी करने लगे और हिन्दुस्तान के राजदरबारों में इनको हाथों हाथ लिया जाता रहा। देखते ही देखते हिन्दुस्तान के राज दरबार में भी फारसी कसीदाकारी और ग़ज़ल गोई अपना रंग दिखाने लगी । इस दौरान भारत में कई मुस्लिम वंशों की हुकूमत रही जो उत्तरी भारत से प्रारम्भ हो कर भारत के दूसरे भागों में फैलता रही । उक्त समय में जिन मुस्लिम वंशों ने हिन्दुस्तान पर शासन किया उनका लंबा इतिहास है ।

इस समय खिलजी वंश के काल में श्अबुल हसन यमीनुद्दीन खुसरो देहलवीश् (अमीर खुसरो, १२५३– १३२५) का नाम भाषा के इतिहास में महत्वपूर्ण है। खुसरो फारसी के महान शाइर हुए १३वी शताब्दी तक भारतीय आर्य भाषा में गद्य तथा पद्य के लिए अलग अलग रूप प्रचिलित हो चुका था भारतीय काव्य की भाषा ब्रज भाषा से प्रभावित थी तथा गद्य के लिए अपभ्रंश से निकली अनेक नवीन आर्य भषाओं के उस रूप का प्रयोग होता था जिन्हें आज हम खड़ी बोली के रूप में जानते हैं। खड़ी बोली में फारसी तथा अरबी भाषा का प्रभाव था तथा यह भाषा ही उत्तर भारतीय बोलचाल की भाषा भी थी। अर्थात मिश्रित भाषा अपना रूप प्रकट कर चुकी थी। इससे पहले बाहर से आये फारसी कवि अरबी और फारसी में फारसी काव्य लिख रहे थे और भारतीय कवि नई नई उभरी ब्रज भाषा में भारतीय छंदों में काव्यरत थे। खुसरो को अरबी, फारसी, ब्रज और इस बोलचाल की मिश्रित खड़ी बोली पर सामान अधिकार प्राप्त था। उन्होंने ब्रज भाषा में भी खूब काव्य रचा और इस मिश्रित बोली में भी कविता लिखी।यहाँ तक कि ब्रज भाषा और मिश्रित खड़ी बोली को मिश्रित करके भी काव्य रचना की उदाहरण देखें :

उज्जवल बरन अधीन तन एक चित्त दो ध्यान
देखत में साधु है निपट पाप की खान

खुसरो रैन सुहाग की जेगी पी के संग
तन मेरो मन पीउ को दोउ भये एकरंग

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डरे केस
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस

इसी प्रकार खुसरो ने दिल्ली तथा आगरा के आसपास बोली जाने वाली ब्रज और आधुनिक खड़ी बोली के उदित रूप के साथ फारसी, तुर्की के प्रचिलित शब्दों का भी सुन्दर मिश्रण किया और एक मिली जुली भाषा का सूत्रपात किया जिसे आमजन आसानी से व्यवहार में ला सकें। खुसरो का यह भाषाई प्रयोग भाषाई एकता की मिसाल है। खुसरो ने जिस मिश्रित भाषा को ईजाद किया वह लोगों की प्रिय बोली बन गयी।

अब तक आर्यावर्त देश के लिए हिन्दुस्तान नाम प्रचिलित हो चुका था। यह नाम यूनानियों की देन है।

यूनानी 'स' का उच्चारण नहीं कर पाते थे और 'स' के स्थान पर 'ह' का प्रयोग करते थे इस कारण वो सिंध नदी को हिंध नदी, सप्ताह को हफ्ताह या हफ्ता आदि कहते थे तथा सिंध नदी के पार के आर्यावर्त देश को हिंदुस्तान और निवासियों को हिंदू या हिन्दुस्तानी कहते थे। १३ वीं शताब्दी तक यह सभी शब्द भारत में भी प्रचिलित हो गए थे। खुसरों ने जिस नई मिश्रित भाषा को जन्म दिया उसे फारसी लिपि में लिखा तथा फारसी से अलग पहचान के लिए 'हिन्दवी' नाम से पुकारा। ध्यान देने योग्य बात है कि खुसरो कालीन हिन्दवी एक साथ आधुनिक हिन्दी और आधुनिक उर्दू का प्राराम्भिक मिश्रित रूप है। इतिहास में अमीर खुसरो के जैसा दूसरा कवि मिलना असंभव है।

अमीर खुसरो ने स्वअविष्कृत हिन्दवी भाषा में कुछ ग़ज़लें कही हैं इसलिए अमीर खुसरो को तत्कालीन आमजन की भाषा 'हिन्दवी' का आविष्कारक तथा हिन्दवी का पहला ग़ज़लगो माना जाता है। इस प्रकार हिन्दवी का जन्म हुआ। अमीर खुसरो ने इस मिश्रित भाषा को परिष्कृत किया तथा अनेक शब्दों को खराद पर चढा कर उसे चमकाया और अनेक भाषाई मानक स्थापित किये।

अब तक भारतीय कवि ब्रज, अवधी, मगधी आदि में काव्य रचने लगे इससे धीरे धीरे अपभ्रंश का युग समाप्त हो रहा था तथा आधुनिक हिन्दी का रूप स्पष्ट हो रहा था । यह नवीन काव्य भाषा देवनागरी लिपि (६०० ई से अब तक) में लिखी जाती थी जो कि प्राचीन ब्राह्मी लिपि (५००ई.पू. से १००० ई. तक) का विकसित रूप है। सनातनी छंद, मुक्तक, काव्य प्रबंध आदि ब्रज भाषा या अवधी आदि भाषा में ही रचे गए और खुसरों के प्रयोगों के बाद गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास, बिहारी, केशव, मालिक मुहम्मद जायसी, रहीम, खानखाना मीराबाई जैसे महान कवियों ने इस 'देशी भाषा' को अपना दुलार और स्नेह दिया परन्तु अमीर खुसरो की 'हिन्दवी' भाषा तथा हिन्दवी शब्द का प्रयोग अक्सर फारसी शुअरा ने नहीं किया। और अगर देशी भाषा में काव्य रचना की भी तो उसकी भाषा हिन्दवी न हो कर ब्रज अथवा अवधी रही। मगर बोलचाल की भाषा हिन्दवी बनती चली गई क्योंकि इसे बोलना सभी के लिए आसान था यह फारसी लिपि में लिखी जा रही थी और भारतीय कवि फारसी भाषा लिखना नहीं जानते थे। हिंदी कवियों ने शुद्ध ब्रज अवधी मगधी आदि को 'देशी भाषा' या 'भाषा' के नाम से पुकारा। 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' और 'भाषा' शब्द प्रयोग के कुछ उदाहरण अमीर खुसरो कृत खलिकबारी (शब्दकोश) से प्रस्तुत है –

मुश्क काफूरस्त कस्तूरी कपूर
हिन्दवी आनंद शादी औ सुरूर

तप लार्जा दर हिन्दवी आमद जूडी ताप
दर्दे सर आमद सिर की पीड़ा तग है धाप

नमक मलह है लोन शीरीं है मीठा
बहिन्दी जबां बेमजा हस्त सीठा

अन्य स्थानों से प्रस्तुत उदाहरण भी देखें –
भाषा बद्ध करब मैं सोई
मोरे जिय अबोध जेहि होई —गोस्वामी तुलसी दास

भाषा भगती थोर मति मोरी – —गोस्वामी तुलसी दास

भाषा बोलि न् जानहीं, जिनके कुल के दास
तिन भाषा कविता करी, शठ मति केसवदास – केशवदास

मुश्क काफूरस्त कस्तूरी कपूर
हिन्दवी आनंद शादी और सरूर
सोजनो रिश्ता बहिन्दी और ताग – अमीर खुसरो

तुरकी, अरबी, हिन्दवी, भाषा जेती आहि
जामे मारगप्रेम का सबै सराहै ताहि – मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी के दोहे को पढ़ कर स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने 'भाषा' शब्द को 'हिन्दवी' अथवा हिन्दी भाषा के लिए प्रयोग नहीं किया है क्योकि फिर 'हिन्दवी' लिखने की आवश्यकता न होती

भाषा इतिहास के पन्नों को पलटें तो पता चलता है कि जिस भाषा को फारसी शाइर अमीर खुसरो ने ईजाद किया था वह लंबे अर्से तक दिल्ली और आसपास के क्षेत्र की बोलचाल की भाषा बनी रही और वहाँ ब्रज अवधी मागधी आदि भाषा केवल भारतीय छंदों के काव्य में प्रयोग होता रहा तथा ब्रज अवधी मागधी आदि भाषा बोलचाल की भाषा के रूप में आज के पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश राजस्थान आदि की भाषा के रूप में उभर कर सामने आई।

अब भाषा के इतिहासकारों ने यह सिद्ध भी कर दिया है कि उर्दू और रेख्ता का पुराना नाम हिन्दवी था कुछ साक्ष्य प्रस्तुत हैं –

हिन्दी उर्दू की अपेक्षा बहुत ही पुराना और सर्वमान्य नाम है जिस भाषा का नाम आजकल उर्दू प्रचिलित है इसके लिए उर्दू के पुराने लेखकों और कवियों ने हिन्दी शब्द का ही अपने ग्रंथों में सर्वत्र व्यवहार किया है।

– हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्तानी, पद्य सिंह पृष्ठ –१६

हिंदी भाषा के जितने नाम प्रचिलित हैं 'हिन्दी' उन सब में पुराना है इस नाम कि सृष्टि हिंदुओं ने नहीं की और न उन्होंने इसका प्रचार किया। हिंदू लेखकों ने तो इसके लिए प्रायः सर्वत्र 'भाषा' शब्द का ही प्रयोग किया है। उर्दू ए कदीम, तारीखे नस्र उर्दू, 'पंजाब में उर्दू' इत्यादि ग्रंथों के विद्वान लेखकों ने बड़ी खोज के साथ यह साबित कर दिया है कि उर्दू का सबसे पुराना नाम हिंदी है।

– हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्तानी, पद्य सिंह पृष्ठ –१६

उर्दू हिन्दी की एक शैली मात्र है सं १७६७ ई. में सैयद अता हुसैन तहसीन ने अपने अनूदित 'चहारदरवेश' नामक ग्रन्थ की भूमिका में अपने भाषा रेख्ता, हिन्दी, उर्दू–ए–मुअल्ला बताया। यह स्मरण रखना चाहिए कि अरबी फारसी बहुल शब्द प्रयोगमार्गी रेख्ता अथवा उर्दू–ए– मुअल्ला को भी अभी हिन्दी कहना बंद नहीं कर दिया गया था। क्रमशः हिन्दी शब्द के प्रयोग की प्रवित्ति शिथिल हुई रेख्ता कहना भी रुका और उर्दू के व्यवहार के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया।

– उर्दू के कवि और उनका काव्य, पं गिरिजा दत्त शुक्ल पृष्ठ १०

मौलाना आजाद ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आबेहयात' में उर्दू को ब्रज भाषा की बेटी माना है परन्तु पं. राम नरेश त्रिपाठी उर्दू कविता कौमुदी में लिखते हैं –

उर्दू कभी किसी भाषा से निकली ही नहीं है हिन्दी का नाम ही उर्दू रख लिया गया है

– उर्दू के कवि और उनका काव्य, पं गिरिजा दत्त शुक्ल पृष्ठ ५४

१६४१ में उपेन्द्र नाथ अश्क द्वारा संपादित उर्दू काव्य की एक नई धारा के दूसरा संस्करण (१६४६) की भूमिका में तारा चन्द्र कहते हैं –

हिन्दी और उर्दू दोनों एक देस हिन्दुस्तान की भाषाएँ हैं दोनों एक सी हालातों में पैदा हुई हैं अगर हम उर्दू और हिंदी के इतिहास पर नजर डालें तो मालूम होगा कि हर समय में दोनों के बीच का साहित्य मिलाता है दकन् की उर्दू शाइरी को लीजिए

तो भाषा हिन्दी शब्दों से भरी है और कविता में हिन्दुस्तान की संस्कृति जोर से झलकती दिखाई देती है आगे चलिए तो सौदा के मरसियों और कसीदों में हिन्दुस्तानियत का चोखा रंग है, उन्नीसवी सदी में नजीर अकबराबादी इसी रंग में रंगा है।

— उर्दू काव्य की एक नई धारा पृष्ठ ६

१४वी शताब्दी से १६ वी शताब्दी के मध्य तक ब्रज अवधी शौरसेनी मगधी वाली श्देशी भाषाश और खड़ी बोली, फारसी मिश्रित 'हिन्दवी' जन मानस की भाषा तो बन चुकी थी परन्तु राज भाषा फारसी घोषित होने और राजदरबार में फारसी भाषा में ही सारा कार्य होने के कारण शाही दरबार में फारसी ग़ज़ल ही कही जाती रही और एक लंबे अरसे तक फारसी कसीदा और फारसी ग़ज़ल आदि से बादशाह की महफिलें रंगीन होती रहीं देशी भाषा और हिन्दवी दरबार में अपनी जगह नहीं बना सकी। यहाँ तक कि जो कवि हिन्दवी में शाइरी करने लगे थे वो भी बादशाह से इनआम आदि प्राप्त होने की लालसा में फारसी शाइरी करने लगे और हिन्दवी और देशी भाषा का प्रभाव दिल्ली आगरा क्षेत्र की ग़ज़लों से समाप्त होता गया।

जिस समय अमीर खुसरो हिन्दवी भाषा का अविष्कार करके उसमें अपनी रचनाओं का सृजन कर रहे थे उस दौरान भाषा के इतिहास में एक नया अध्याय दकन राज्य में लिखा गया। खिलजी वंश के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी दक्षिण विजय आरम्भ की, अलाउद्दीन खिलजी के इस कदम से इस्लाम धर्म, संस्कृति और फारसी जुबान के साथ हिन्दवी भी सुदूर दकन तक पहुँची। तत्पश्चात तुगलक काल में मुहम्मद बिन तुगलक ने अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद स्थानांतरित कर दी और दिल्ली के निवासियों को दौलताबाद ले गया इस कारण उत्तर भारत की संस्कृति का प्रसार तेजी से अन्य प्रान्तों में हुआ। बाद में दिल्ली के सुलतान तो वापस दिल्ली आ गए लेकिन बहुत लोग वहीं रह गए जिनमें शाइर और कवि भी थे तत्पश्चात दकन में मुस्लिम शासन बहमनी वंश (१३४८—१५२६) की स्थापना हुई। श्देशी भाषाश तथा दक्षिणी भाषा के मिश्रित क्षेत्र दकन में इस समय हिन्दवी और फारसी को एक समान आश्रय मिला और जब 'हसन गंगो बहमनी' ने १३४८ में बहमनी वंश स्थापित किया तो घटनाक्रम ऐसे बनते गये कि हिन्दवी को प्राथमिकता मिलाने लगी तथा हिन्दवी को फारसी लिपि की जगह देवनागरी लिपि में लिखा जाने लगा और नाम बदल कर इसे दकनी या दक्खिनी कहा गया।

१५वी शताब्दी समाप्त होते होते बहमनी राज्य पांच टुकड़ों में बाँट गया। जिसके फलस्वरूप बीजापुर में आदिलशाही (१४६० ई.), गोलकुंडा में कुतुबशाही (१५१२ ई.) बीदर में बदीरशाही (१४८७ ई.), बाराद में इमादशाही (१४६० ई.) और अहमदनगर में निजामशाही(१४६० ई.) स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापित हुए तथा यहाँ दक्खिनी भाषा में शाइरी की गयी शाइरी की यह मिश्रित भाषा दक्खिनी शाइरी कहलाई। यह दक्खिनी शाइरी ही उर्दू जबान और उर्दू शाइरी की नींव बनी।

प्रारम्भ में दकन की भाषा 'दक्खिनी' दिल्ली की हिन्दवी से मूलतः काफी करीब थी परन्तु १५वी और १६वी शताब्दी की हिन्दवी और दक्खिनी में आ चुके अंतर को स्पष्ट देखा जा सकता है। 'हिन्दवी' फारसी लिपि में लिखी जाती थी जहाँ शाइर मूलतः फारसी शाइरी करते थे यही कारण रहा कि धीरे धीरे हिन्दवी में भी शब्द अधिकतर फारसी, अरबी और तुर्की होते गए और इस समय की हिन्दवी जुबान में फारसी और तुर्की शब्दों की भरमार हो गयी वहीं दक्खिनी शाइर देशी भाषा क्षेत्री थे इस कारण उन्होंने जो शाइरी की उसमें मूल रूप से खड़ी बोली के शब्द होते थे और अरबी फारसी के वो शब्द ही आ सके थे जो दिल्ली से बोलचाल में खूब प्रयोग होने वाले शब्दों के रूप में दकन आये थे। दक्खिनी भाषा पर दक्षिणी भाषा का प्रभाव भी पड़ा रहा था। समय के साथ फिर से घटनाक्रम बदला और यह दक्खिनी शाइरी ही रेख्ता शाइरी की बुनियाद बनी

इस प्रकार स्पष्ट है कि जो उर्दू दिल्ली वालों को १८वी शताब्दी की शुरुआत में प्राप्त हुई दक्षिण में उस उर्दू के प्रारंभिक रूप में दक्खिनी नाम से १५वी शताब्दी के प्रारम्भ से १७ शताब्दी के अंत तक अर्थात ३०० साल तक काव्य सृजन होता रहा।

१६वीं शताब्दी तक जब दक्खिनी भाषा का स्वरूप स्पष्ट होने लगा तो दिल्ली और आगरा के फारसी भाषी इसे भाषा का बिगाड़ा हुआ रूप मानते थे इसलिए 'दक्खिनी' को रेख्ता विशेषण दिया गया रेख्ता का शाब्दिक अर्थ होता है गिरा—पड़ा, बिखरा हुआ।

'रेख्ता फारसी के रेख्तन मसदर (धातु) से बना है जो बनाने, ईजाद करने, किसी चीज को कालिब में ढालने, नई चीज बनाने और मौजूँ करने के मानी में आता है।'

— हिंदी उर्दू हिन्दुस्तानी पद्य सिंह शर्मा पृष्ठ — २१

रेख्ता नाम का प्रयोग सर्वप्रथम सादी दक्खिनी (१५८६) के कलाम में देखने को मिलता है। इस तरह दिक्खिनी भाषा रेख्ता नाम से भी पुकारी गयी। दक्खिनी शुअरा में सुल्तान कुली कुतुबशाह, अली आदिलशाह, बुर्हानुमुद्दीन जानिम, सादी, वली, अजमत आदि का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इस दक्खिनी शाइरी का अपना एक विस्तृत इतिहास है तथा विषयान्तर भय से यहाँ पर इसका विस्तृत उल्लेख संभव नहीं है। १७ वीं शताब्दी की दक्किनी शाइरी का जो रूप हमें उपलब्ध है उससे स्पष्ट हो जाता है कि यह भाषा कुछ और नहीं अमीर खुसरो कि हिन्दवी ही थी जो दक्षिण की बोली के साथ मिल कर दक्खिनी बन बैठी दक्खिनी शाइरी का नमूना देखने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रेख्ता ही असली भाषा थी जिसे जन भाषा कहा जा सकता है क्योकि यह दिल्ली और आगरा की बोलचाल की भाषा के भी बहुत करीब थी । परन्तु दिल्ली आने के बाद फारसी दानिशवरों ने इस सरल जबान रेख्ता पर भी फारसी का ऐसा रंग चढाया कि पहचानना मुश्किल हो गया कि यह किसी देशी जबान का ही समृद्ध रूप है या फारसी जबान कि कोई नई उपशाखा। दक्खिनी शाइरी के चंद नमूने देखें —

तेरे नेह का मुंज को बिच्छू लड़या ।
मेरे सब ही तन मे बिस उसका चड़या।
मै आई हूँ तुज पास उतारा करन ।
तुमी करने हारा उतारा पियारा।

— सुल्तान कुली कुतुबशाह

दिल मेरा अपने सात किया
मुज बिरहे मे दिन रात किया
दिलदारी का ना बात किया
सब बिसरा सुख है हात किया – अली आदिलशाह

इधर दिल्ली में जब १५३६ ई में मुगलों का आगमन हुआ तो हिन्दुस्तानी भाषाओं के लिए माहौल कुछ सरस हुआ, मुगलों की बोलचाल की भाषा तुर्की नहीं थी। मुगल वंश में कई ऐसे शासक हुए जो सास्कृतिक और साहित्यिक रुचि के थे और अन्य भाषाओं को पूरा सम्मान देते थे, वास्तव में यह काल हिन्दी का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस समय तक अवधी और ब्रजाभाषा का साहित्यिक रुप स्पष्ट हो चुका था तथा अवधी भाषा के महान ग्रन्थ तुलसीदास कृत 'राम चरित मानस' तथा जायसी कृत 'पदमावत' इसी समय लिखे गये और ब्रजभाषा के अनेक ग्रन्थ भी इसी समय लिखे गये जिनके मुख्य रचनाकार तुलसीदास, केशवदास, नंददास, बिहारी, सूरदास हैं।

१६ शताब्दी में मुगल शासक भारत आये तो यहाँ शासन व्यवस्था को सुचारु रुप से चलाने के लिए अपनी सेना का विस्तार किया तथा प्रशासन के कार्यो के लिए भी हिन्दुस्तान के अनेक धर्मावलम्बियों को भर्ती किया। शुद्ध फारसी न जानने के कारण ऐसे सिपाहियों ने शाही दरबार और छावनी में भी हिन्दवी भाषा का प्रयोग करना शुरू कर दिया । ऐसे सैनिक लश्कर(छावनी) में रहते थे इसलिए इसे वहाँ लश्कर की भाषा 'लश्करी' कहा गया जिसे कालान्तर में 'उर्दू –ए–मोअल्ला' कहा जाने लगा।

रेख्ता को शाइरी की जुबान बनाने और उसे दिल्ली दरबार तक पहुचने का कार्य वली दक्खिनी ने किया।

वली (१६६८ई.–१७४४ई.) दृ शम्सुद्दीन वलीअल्लाह 'वली' औरंगाबाद के रहने वाले थे इन्होने अहमदाबाद से तालीम हासिल की थी और एक सूफी शाइर थे जोकि अन्य सूफी फकीरों की तरह फारसी में शाइरी करते थे साथ ही साथ दक्किनी के भी प्रसद्ध ग़ज़ल गो थे सन १७०० में औरंगजेब के शासन काल में वली दिल्ली आये और अपना दक्खिनी कलाम पेश किया इस समय तक दिल्ली के दरबार में फारसी शाइरीका बोलबाला था वली की दक्कनी शाइरी को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया गया। यहाँ तक कि इन्हें कहा गया कि आप फारसी रंग में शाइरी करें। वली ने वापस लौट कर दक्कनी भाषा में फारसी भाषा की सभी काव्य विशेषताओं को इस प्रकार समायोजित किया कि वह शाइरी की द्रष्टि से श्रेष्ठ भाषा बन गयी जिसमें अनुशासन के साथ साथ ऐसा लोच था जो भाषा के सौंदर्य को बढ़ा देता था। आपके द्वारा भाषा पर इस अभूतपूर्व कार्य ने ही उर्दू शाइरीकी नींव की ईंट रखी। रेख्ता के इस नए तथा परिष्कृत रूप पर अपनी पकड़ बना कर और श्रेष्ठ ग़ज़लें कह कर वली १७२४ ईस्वी में मुहम्मदशाह के शासनकाल में एक बार फिर से दिल्ली पहुंचे, इस बार उनके साथ वो भाषा थी जो दिल्ली में पहले से लश्करी जबान के नाम से जानी जाती थी, लश्करी के इस परिष्कृत रूप में की गयी शाइरी ने दिल्ली के शुअरा तथा जनता को चौका दिया। अब तक फारसी में की जाने वाली शाइरी शहर के चंद भाषा मर्मज्ञ तो समझ लेते थे परन्तु वह अनपढ़ जनता की समझ से परे की चीज थी, रेख्ता आम आदमी की भाषा थी जो आसानी से समझ में आ जाती थी वली के शाइरीको जनता द्वारा कलाम–ए–रेख्ता रूप में हांथों हाँथ लिया गया और खूब पसंद किया गया और धीरे धीरे रेख्ता गजलिया शाइरी की पसंदीदा जबान बन गयी और फारसी की पेचीदा शाइरी से ऊब कर फारसी शाइर भी जयका बदलने के लिए कभी कभी जबाने रेख्ता में कलाम कहने लगे और बोलचाल की भाषा होने के कारण अवाम ने रेख्ता में लिखे कलाम को खूब पसंद किया। यह परिष्कृत लश्करी जुबान जनता की प्रिय बोली बन गयी तथा हर समुदाय सम्प्रदाय ने इस बोली को खुले दिल से स्वीकार किया, १८०० ईस्वी के आसपास इस परिष्कृत रेख्ता को ही उर्दू कहा जाने लगा इस प्रकार उर्दू का जन्म हुआ।

वली के दक्खिनी कलाम का नमूना देखे –

बिरागी जो कहाते है उसे घर बार करना क्या।
हुई जोगिन जो कोई पी की उसे संसार करना क्या ।
जो पीवे पिर्त का पानी उसे क्या काम पानी सो।
जो भोजन दुख का करता है उसे आधार करना क्या।

हंसली तुझ गल मे देख कहते है
चॉद से मुक्ख का है यों हाला

नैन मिगों की घॉस पकडी मुख
देख तेरी अंखियॉ का दुंबाला।

(उर्दू शब्द को भाषा के सन्दर्भ में १८०० ई के आसपास मान्यता मिली है परन्तु सरलता के लिए इस लेख में आगे रेख्ता को उर्दू नाम से ही संबोधित किया जा रहा है)

वली को उर्दू का बाबा आदम और उर्दू ग़ज़ल का आदि शाइर माना गया है, यहाँ से ही उर्दू ग़ज़ल की बुलंद इमारत में देहली स्कूल की नींव पडी जो विभिन्न परिस्थितियों एवं घटनाओं के साथ फलने फूलने लगी। वास्तविकता यही है कि वली के कलामे रेख्ता से अनेक फारसी शुअरा का रुझान उर्दू शाइरी की ओर हुआ तथा उर्दू शाइरी का दौर आया ।

देहली स्कूल के प्रारंभिक दौर के उर्दू शुअरा में शाह मुबारक आबरू, मोहम्मद शाकिर नाजी, सरफुद्दीन मजमून और गुलाम मुस्तफा खान 'यकरंग' आदि नाम का विशेष उल्लेख किया जाता रहा है

दूसरे दौर के शुअरा में सिराजुद्दीन अली खां 'आरजू'(१६८६–१७५६), अशरफ अली खां 'फुगाँ' (१७७२), शाह हातिम (१७०० दृ १७६१) और मजहर जाने जानां (१६६६–१७८१) प्रमुख हैं। इन शुअरा को उर्दू के नए दौर का आरम्भ करने वाला कहा जाता है इनके काव्य से उर्दू भाषा की वर्णन क्षमता में वृद्धि हुई और वर्णन में शुद्धता और स्पष्टता आई। इन शुअरा के प्रयास से उर्दू भाषा में काफी सुधार आया तथा इन्होने भाषा को सरल तथा प्रवाहमय बनाने पर भी ध्यान दिया

'हातिम' और 'मजहर' के दौर के तुरंत बाद उर्दू शाइरी का वह दौर आया जो उर्दू काव्य जगत में सबसे महत्वपूर्ण है। देहली स्कूल के इस तीसरे दौर में मीर तकी श्मीरश (१७२२ –१८१०) जैसे महान शाइर, मिर्जा मुहम्मद 'सौदा' (१७१४–१७८१) जैसे कसीदाकार और मीर

गुलाम हसन (१७२४–१७८४) जैसे मसनवी के महान शाइर हुए जिनकी श्रेष्ठता तक आज भी कोई शाइर नहीं पहुँच सका है। ख्वाजा मीर 'दर्द' (१७२१–१७८५ या १७१५ दृ १७८३) और सैयद मोहम्मद मीर 'सोज' (१७२१–१७९८) भी इस अवधि के प्रमुख शाइर हैं। इनमें से भी मीर तकी मीर को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और खुदा–ए–सुखन (शाइरी का भगवान) कहा जाता है, मीर साहब का जन्म १७२२ ईस्वी को आगरा में हुआ और बचपन में ही दिल्ली आ गए और ६५ वर्ष की आयु तक दिल्ली में रहे तदुपरांत लखनऊ का रुख किया और १८१० ईस्वी को लखनऊ में ही जन्नतनशीन हुए। देहली स्कूल का यह दौर आध्यात्मवादी और सूफीयत से प्रभावित कविता का केन्द्र रही है

दिल्ली स्कूल के अन्य महान शुअरा में वली मुहम्मद नजीर अकबराबादी (१७४०– १६ अगस्त १८३०) शेख इब्राहीम 'जौक' (१७८९–१८६४ या १८५४), मोमिन खां 'मोमिन'(१८००– १८५१) मिर्जा असदल्ला खां 'गालिब' (१८०६ या १८६६–१८६९) और बहादुर शाह जफर (१७७५– १८६२)

जौक और गालिब की शाइरी में भी सूफियत की स्पष्ट छाप है इन श्रेष्ठ शुअरा के काव्य में वर्णित भावनाओं और अनुभूतियों की पवित्रता और तीव्रता ने दिल्ली स्कूल की शाइरी को काव्य कला के चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। 'हुस्न और इश्क' 'शमा और परवाना' गुल और बुलबुल की परम्परागत उर्दू शाइरी की परिधि में भी जीवन का आध्यात्मवादी दृष्टिकोण इन कवियों ने सदैव अपने सम्मुख रखा। इन कवियों के कालजयी काव्य नें उर्दू शाइरी को ज्योतिर्मय कर दिया।

जौक और गालिब के अतिरिक्त अंतिम मुगल शासक बहादुर शाह जफर की शाइरी में भी सूफीमत से प्रभावित व्यापक मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति मिलती है

सारांश यह है कि दिल्ली के इस दौर में श्रेष्ठ काव्य रचना की गयी और शाइरी में अनुभूति की पवित्रता, सादगी, स्पष्टता अबिव्यक्ति तथा स्वाभाविकता को विशेष महत्त्व दिया गया।

इस दौरान १८वी शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में पतोनमुखी मुगल वंश अपनी अंतिम साँसे गिन रहा था। नादिरशाह ने १७३७ ई. में, अहमद शाह अब्दाली ने १७४८,१७५१ और १७५६ में तथा मराठों और जाटों ने देहली पर निरंतर आक्रमण किये इन परिस्थितियों में उर्दू शाइरी को भी गहरा आघात लगा। शाही संरक्षण के अभ्यस्त हो चुके देहली के शाइर दिल्ली छोड़ कर छोटी रियासतों के राजाओं और नवाबों का संरक्षण प्राप्त करने का प्रयास करने लगे। शुअरा का देहली से प्रस्थान करने का प्रभाव यह हुआ कि लखनऊ, अजीमाबाद(पटना), रामपुर और हैदराबाद जैसे शाइरी के नए केन्द्र पैदा हो गए ख्वाजा मीर दर्द को छोड़ कर बाकी सभी प्रमुख शाइर लखनऊ आ कर बस गए जिसे कालांतर में लखनऊ स्कूल के नाम से जाना गया।

लखनऊ स्कूल

इतिहास अपनी खामियों को समय के गर्दो गुबार से छुपा देता है जब दिल्ली पर विपत्तियों का पहाड़ टूटा तो वहाँ के शईरों ने इस दर्द को अपने कलाम से बयान किया और इस पुरदर्द शाइरीसे दिल्ली शाइरीअपनी श्रेष्ठता को प्राप्त करने लगी परन्तु जब देहली के अभावग्रस्त जीवन से घबरा कर शाइर रामपुर और लखनऊ का रुख करने लगे तो वहाँ के नवाबों ने इनको सर आखों पर कुबूल किया और जिंदगी की ऐसी रंगीनी इनको पेशे नजर हुई कि ये आभाव के दिन को भूल गए। लखनऊ के रंगीन जनजीवन का व्यापक असर शईरों के कलाम पर पड़ा जो शाइर कुछ दिन पहले अपने फाकाकशी का पुरदर्द नगमा गा रहे थे अचानक नवाबों पर कसीदा लिखने बैठ गए और जो दिल्ली शहर के उजड़ जाने पर ह्रदय विदारक शहर आबोश लिख रहे थे लखनऊ पहुँच कर प्रेयसी की पतली कमर के गम हो जाने की बात पर दुःख व्यक्त करने लगे।

लखनऊ स्कूल का शुरुआती रंग देखिये –

आये थे जिस चमन से वह बर्बाद हो गया
अब क्या कफस में याद करें इस बहार को
उतारे हैं सहने बाग में फूलों के काफिलऐ
नजरें दिखा रहे हैं उरूसे बहार को – चकबस्त लखनवी

क्या जानिए क्या हल है याराने अदम का
इक उम्र हुई है नहीं आई है खबर भी
फुरकत में अमीर ऐसी बरसती है उदासी
रोते हैं मेरे हल पै दीवार भी दर भी – अमीर लखनवी

इस बदलाव ने शाइरी का बहुत नुकसान किया। लगभग २० – ३० वर्षों में ही शाइरी अपने उत्कर्ष से पतन की ओर अग्रसर हो गयी। लखनऊ पहुँच कर शाइरी का जो रूप बदला उसे इन अशआर से समझा जा सकता है।

लखनऊ स्कूल के प्रमुख शुअरा में मुसहफी, नासिख, आतिश, असीर, आरजू, अमीर मीनाई आदि का नाम लिया जाता है।

१८वी शताब्दी का अंत आते आते भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में फिर से बड़े बदलाव हुए जिससे भाषा और ग़ज़ल के इतिहास में नए अध्याय जुड़ गए अंग्रेजो का आगमन और शासन की बागडोर उनके हाथों में चली जाना यह दो कार्य इतने कम समय में हुए कि भारतीय भाषा की नदी में एक बार फिर से कुछ धाराएं आ कर जुड़ गई। १८०२ के आसपास आगरा उपप्रांत अंग्रेजो के हाथों में चले गए तथा १८५६ तक अवध पर अंग्रजों का पूर्ण अधिकार हो गया, इस समय तक मुसलमानों के बीच खडीबोली उर्दू जोर पकड चुकी थी। अंग्रेजो को सामन्जस्य बैठाने में दिक्कतें आती थीं इस कारण हिन्दुओं के लिए कुछ प्रयोग करवाए जिसमें फोर्ट विलियम कालेज का बडा योगदान रहा।

मुगल साम्राज्य के ध्वंस से खड़ी बोली के प्रचार में सहायता पहुँची। उजड़ती हुई दिल्ली को छोड़कर दिल्ली के आसपास के हिंदू व्यापारी जीविका के लिये लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना, आदि पूरबी शहरों में फैलने लगे। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की भाषा भी खड़ी बोली हो गई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू–ए–मुअल्ला नहीं। यह समय हिंदी (खड़ीबोली) भाषा के जन्म का समय था, इसका साहित्यिक गद्य के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लू जी लाल ने अपने ग्रन्थ 'प्रेमसागर' में किया। लल्लू जी लाल और पं. सदल मिश्र को खड़ी बोली के उन्नायक तथा इसको प्रगति प्रदान करनेवालों में माना जाता है।

मुसलमानों के द्वारा इसके प्रसार में सहायता अवश्य प्राप्त हुई। साधारणतरू लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ तथा मुंशी सदासुखलाल खड़ी बोली गद्य के प्रतिष्ठापक कहे जाते हैं परंतु इनमें से किसी को भी इसकी परंपरा को प्रतिष्ठित करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। आधुनिक खड़ी बोली गद्य की परंपरा की प्रतिष्ठा का श्रेय भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को प्राप्त है जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा एक सरल सर्वसम्मत गद्य शैली का प्रवर्तन किया। कालांतर में लोगों ने भारतेंदु की शैली अधिक अपनाई।

वस्तुतः आधुनिक हिंदी साहित्य खड़ी बोली का ही साहित्य है जिसके लिए देवनागरी लिपि का सामान्यतरू व्यवहार किया जाता है और जिसमें संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के शब्दों और प्रकृतियों के साथ देश में प्रचलित अनेक भाषाओं और जनबोलियों की छाया अपने तद्भव रूप में विद्यमान हैं।

हिन्दी ग़ज़ल

कुछ अंग्रजो की नीति और कुछ खडी बोली हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का अति आग्रह रहा कि जिस मिश्रित भाषा को हिन्दुस्तान की मिट्टी ने कभी अलग नहीं होने दिया, उसी जमीन में ऐसा समय भी आया कि हिन्दी को संस्कृत की ओर मोड दिया गया । बोलचाल की भाषा में तो ऐसा सम्भव नहीं था मगर हिन्दी साहित्य से चुन चुन कर फारसी, अरबी, तुर्की शब्दों को बाहर कर दिया गया और शुद्धता के चक्कर में ऐसी भाषा का प्रयोग करने लगे जिसमें आम आदमी की भाषा का कहीं कोई स्वरुप ही नहीं दिखता था, यह बात भारतीय भाषा को दो भाग में बॉटती चली गई, प्रतिक्रिया स्वरूप उधर यही कार्य उर्दू के साथ भी हुआ और उर्दू को फारसी के समकक्ष ले जा कर खडा कर दिया गया।

अब तक भाषा की जिस नदी में अलग अलग धाराएं आ कर जुड रही थी और भाषा को समृद्ध करती रही थीं उसको दो बराबर भाग हिन्दी और उर्दू में विभाजित करके उनका रुख विपरीत दिशाओं की ओर मोड दिया गया। ग़ज़ल पर इसका उतना अधिक प्रभाव तो नहीं पडा क्योकि अब तक यह मुख्यतरू फारसी और उर्दू में ही कही जाती रही था परन्तु हिन्दी के साहित्यकारों और कवियों ने यदा कदा साहित्यिक हिन्दी में भी ग़ज़ल कही है यह वे लोग थे जिनको उर्दू और फारसी की भी अच्छी समझ थी जिसके कारण अरुज की भी समझ रखते थे। एक नमूना देखें –

खिल रही है आज कैसी भूमि तल पर चांदनी
खोजती फिरती है किसको आज घर घर चांदनी

घन घटा घूंघट हटा मुस्काई है कुछ ऋतु शरद
मारी मारी फिरती है इस हेतु दर दर चांदनी

रात की तो बात क्या दिन में भी बन कर कुंदकास
छाई रहती है बराबर भूमि तल पर चांदनी

सेत सारी युक्त प्यारी की छटा के सामने
जंचती है ज्यों फूल के आगे है पीतर चांदनी
(सेत सारी – श्वेत साड़ी, सफेद साड़ी)

स्वच्छता मेरे हृदय की देख लेगी जब कभी
सत्य कहता हूँ कि कंप जायेगी थर थर चांदनी
– शाइर – 'दीन' (१६४० के आसपास)

शायद यही कारण रहा कि जब भारतेंदु हरिश्चंद्र ने उर्दू मे ग़ज़ल कही तो अपना तखल्लुस रसा रख कर शाइरी की।

दिल मेरा ले गया दागा करके
बेवफा हो गया वफा कर के

हिज्र की शब घटा ही दी हमने
दास्ताँ जुल्फ की बढ़ा कर के

दोस्तों कौन मेरी तुरबत पर
रो रहा है रसा रसा कर के : भारतेंदु हरिश्चंद्र 'रसा'

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में कई शुअरा की ग़ज़लें हमें उपलब्ध हैं जिनको साठोत्तरी ग़ज़ल के नाम से भी जाना जाता है इस रूप में जय शंकर प्रसाद तथा सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की ग़ज़लें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं

वर्तमान परिदृश्य

यह ग़ज़ल विधा की लोकप्रियता ही है कि रिक्शा चालाक और ट्रक ड्राइवर भी अपने वाहन में शेर या अशआर लिखते हैं जब कोई विधा जनमानस में इस हद तक लोकप्रिय हो जाये तो उसे किसी भाषाई प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

ग़ज़ल के इतिहास से परिचित हो कर हम जान चुके हैं कि किस तरह यह विधा भारत मे पनपी है और ग़ज़ल कैसे उर्दू ग़ज़ल बनी। उर्दू से हिन्दी और अब हिन्दी से आगे हिन्दुस्तान की और जबानो में ग़ज़ल का सफर भाषा का सफर बन गया जैसे जैसे वक्त के साथ बोली का रंग बदला ग़ज़ल में भी भाषा का रंग बदलता गया हिन्दवी का इतिहास चाहे थोडा पुराना हो मगर जिस हिन्दी को आज हम अपनी अभिव्यक्ति का साधन पाते हैं उसकी भूमिका अंग्रेजों के समय में बनी

न जाने ऐसे कितने मनीषी होंगे जिन्होंने इस यज्ञ में अपनी आहुति दी और आज हम उनसे अनजान हैं आज कही उनकी बात नहीं हो रही है परन्तु जितना हम जानते हैं वह भी यह बताने के लिए पर्याप्त है कि हिन्दी ग़ज़ल को अभी एक लंबा सफर तय करना है अभी केवल यह समझा जाये कि मंजिल पाने के लिए घर से निकल कर दो तीन कदम ही बढ़ाया है। अभी तो हिन्दी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़ल से बारीकियों को समझने की जरूरत थी मगर ऐसा होने के पहले ही हिन्दी उर्दू के बीच इतनी चौड़ी खाई बना दी गयी कि दोनों का संवाद ही खत्म होने जैसी स्थिति बन गयी वहीं कुछ जानकार लोग इस ज्ञान को दूसरों के साथ साझा न करने की सोच लेकर भी बैठे रहे, जिस ग़ज़ल की बारीकियां उर्दू परम्परा में पिता द्वारा पुत्र और उस्ताद द्वारा शिष्य को फक्र के साथ विरासत के रूप में सौंपी जाती रही है वह विरासत हिन्दी के जानकारों के पास आई तो पोटली में बाँध कर संदूक में डाल दी गयी। आज नई पीढ़ी पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह कुछ सीखना नहीं चाहती है, मगर इस स्थिति तक आने के पीछे की कहानी को समझना भी आवश्यक है जब सालों तक हिन्दी

ग़ज़ल लिखने वालों को अरूज से दूर रखा गया और एक पूरी पीढ़ी में केवल कुछ लोग ही रह गये जो ग़ज़ल की प्रकृति से परिचित थे तो उन्होंने भी अपने ज्ञान को खुद तक सीमित रखा। यह कार्य उर्दू के जानकारों ने भी किया। उर्दू के जानकार लोग हिन्दी वालों से अपने ज्ञान को साझा करने से बचते रहे और इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि एक समय यह आया है कि हिन्दी भाषियों में ग़ज़ल कि लोकप्रियता ने ही इसके लिए खतरा पैदा कर दिया है आज हर हिन्दी कवि ग़ज़ल पर आसक्त है अधिकतर गीतकार, नवगीतकार, दोहाकार आदि अपनी मुख्य विधा में लेखन के साथ साथ ग़ज़ल भी कह रहे हैं। यहाँ तक कि जो कवि हिन्दी के किसी छन्द में काव्य नहीं लिखते और जिन्हें छन्द मुक्तता प्रिय है वह भी ग़ज़ल लिख रहे हैं और रदीफ काफिया बह्र से दो–दो हाँथ कर रहे हैं। एक लंबे समय से हिन्दी में तमाम नए लोग अंदाजन ग़ज़ल लिखते रहे हैं, यदि किसी जानकार की कृपा हुई तो कुछ बहर तथा बारीकियों को जानने का अवसर मिल गया अन्यथा ऐसे ग़ज़लकारों की भी एक बड़ी तादात है जिनके संग्रह की अधिकतर ग़ज़लें ग़ज़ल के शिल्प के कारण से खारिज हो जाएँ। इसका सबसे बड़ा कारण मंचों पर ग़ज़ल का सबसे ज्यादा पसंद होना और ग़ज़लकारों को जियादा दाद मिलना भी रहा है, स्वाभाविक ही था कि कवियों का मन ग़ज़ल की और मुड़ा। इसका फायदा हुआ कि ग़ज़ल विधा अपनी स्वभाविक रफ्तार कि अपेक्षा कई गुणा तेजी से हिन्दी काव्य पथ पर बढ़ रही है परन्तु उतना ही नुक्सान भी हुआ निश्चित ही इस नुक्सान को देख कर ही शुअरा को यह शे'र कहना पड़ा –

ग़ज़ल वालों के हाथों ही गजब है
ग़ज़ल के साथ धोखा हो रहा है – एहतराम इस्लाम

सुख़नवरों ने ख़ुद बना दिया सुख़न को इक मजाक
जरा–सी दाद क्या मिली ख़िताब माँगने लगे – राहत इन्दौरी

हिन्दी कवियों ने ग़ज़ल के साथ इतना अत्याचार किया कि ग़ज़ल विधा भी अपनी दुर्दशा पर रो पडी होगी, वहीं हिन्दी कवियों द्वारा किये जा रहे इस दुर्व्यवहार ने उर्दू शुअरा के मन में यह बात बैठा दी कि हिन्दी कवि अच्छी ग़ज़ल नहीं कह सकते यहाँ तक कि 'ग़ज़ल कह ही नहीं सकते', आज जरूरत है कि हिन्दी भाषी ग़ज़लकारों में भी उस्ताद–शागिर्द की परम्परा को पुनः जीवित किया जाये और ग़ज़ल का ज्ञान पुरानी पीढ़ी द्वारा नई पीढ़ी को पूरे सम्मान के साथ विरासत के रूप में सौंपा जाये। रात कितने भी काली हो कुछ तारे ही राहगीर को रास्ता दिखा देते हैं, हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में भी कई नाम चमकते सितारों की तरह हैं जो लगातार नई पीढ़ी को रास्ता दिखा रहे हैं

भाषागत बदलाव कभी साहित्यिक प्रयास और व्याकरण से नहीं थम पाते हैं और यदि इसे बांधने का प्रयास किया जाता है तो भाषा सभी बंधनों को तोड कर आगे जाती है इसलिए बदलाव के साथ खुद को बदलना भी आवश्यक है। अनेक मनीषी हैं जो ग़ज़ल की बारीकियों को देवनागरी लिपि में साझा कर रहे हैं अब अनेक पुस्तकें हिन्दी में भी उपलब्ध हैं जिनको पढ़ कर ग़ज़ल की बारीकियों को समझा जा सकता है नई पीढ़ी का भी कर्तव्य है कि वह अपने पुरोधाओं से ग़ज़ल की बारीकियों को समझने में कोताही न करे क्योंकी ग़ज़ल वह विधा है जो हमें इश्क करना सिखा सकती है। देखिए तो शुअरा ने क्या खूब कहा है :

गर सलीका नहीं इश्क का
बस ग़ज़ल पढ़ लिया कीजिये – इम्तियाज अहमद गाजी

मैं तो ग़ज़ल सुना के अकेला खड़ा रहा
सब लोग अपने चाहने वालों में खो गए – कृष्ण बिहारी नूर

❑❑❑

औरत

डॉ. आशुतोष मिश्रा

औरत .
सिर्फ एक
माँ, पत्नी, प्रेमिका
बेटी, बहू, सास,
दादी, नानी
ही नहीं.....
एक जीता जागता
उदाहरण भी है
त्याग, ममता, बत्सलता
और संघर्ष का भी..........
एक निर्मात्री भी
मूल्यों , संस्कारों, परम्पराओं
और इतिहास की..............
एक इज्जत भी
घर कुटुंब, गाँव
और देश की.....
पर शायद अर्थहीन हो गया है
उसका सब कुछ होना भी
सिमट गया है
उसका बिरात स्वरुप
सिर्फ ,
एक मनोरंजन,
एक खिलौना,
एक तमाशा
एक प्रदर्शन की बस्तु
और वासना की तृप्ति तक

गाँधी का चौथा बन्दर

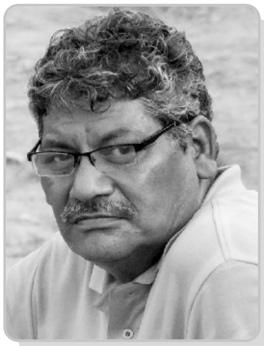

"ये नया ठेकेदार और इंजीनियर दोनों बहुत हरामी हैं। दोनों साले मिलकर सरकार को चूना लगा रहे हैं। सुना है कि ये सीमेंट बेचकर मोटी कमाई भी कर रहे हैं, और....."

शायद पिछले वर्ष की ही बात है जब उसके एक साथी कर्मचारी ने धीरे से उसके कान में कहा था।

इससे पहले कि बात पूरी होती उसने अपने कानों के पर्दों को कई मोटे मोटे तालों में बंद कर दिया था। उसको ऐसा करते देख, अपने कानों पर हाथ रखकर बैठे बापू का बन्दर मुस्करा उठा था। यह उन तीन बंदरों में से एक था जिन्हें उसका गांधीवादी बाप उसके कन्धों पर बिठा गया था।

कुछ हफ्ते पहले ही नए नए बने पुल के गिर जाने से बहुत से लोग मारे गए थे। इस पुल का निर्माण उसी कम्पनी ने किया था जहाँ वह काम करता था। किसी साथी ने उसे बताया भी था कि कम सीमेंट डालकर घटिया मिक्सचर बनाने का यह काम उसके दफ्तर के पीछे ही हुआ करता था। वहीं पैसों का लेनदेन भी होता है। उसके मन में कई बार सच्चाई को अपनी आँखों से देखने की इच्छा हुई भी, किन्तु अपनी आँखों पर हाथ रखे हुए गाँधी के एक बन्दर ने उसे घूरते हुए बुरा देखने से मना कर दिया था।

मगर आज तो हद ही हो गई, बाजार में तेज गति से मोटर साइकिल चलाते हुए सवार युवक ने उसे पीछे से टक्कर मार दी। वह सड़क से उठा ही था कि यह युवक दनदनाता हुआ उनके सामने आ खड़ा हुआः

"अबे ओए कांगड़ी पहलवान! साले देखकर नहीं चल सकता क्या?"

"अरे! लेकिन मैं तो......" उसने खुद को सम्हालते हुए कुछ कहने का प्रयास किया ही था कि वह युवक भड़कता हुआ आगे बढ़ाः

"अबे क्या बकरी की तरह मैं– मैं क्या कर रहा है भैण के यार? दूँ क्या दो चार कनटाप?"

"अबे छोड़ यार! बुड्ढा है, मर जाएगा मादर......." युवक के साथी ने उसे पीछे खींचते हुए कहा।

गालिओं की बौछार से उनका धैर्य जवाब दे रहा था, क्रोध से नथुने फुलाते हुए वे कुछ बोलने ही वाला था कि बापू के तीसरे बन्दर ने होंठों पर उँगली रखते हुए उसे बुरा बोलने से मना कर दिया। बाकी दो बंदरों ने भी उसकी बात पर सहमति जताई। उसने जलती हुई दृष्टि से देखा तो अचानक वे तीनो बन्दर बहुत ही भद्दे और बूढ़े दिखाई दिए। उसने एक झटके से तीनों को अपने कंधों से उतार कर दूर पटक दिया। फिर पास पड़ी हुई ईंट उठाकर उनकी तरफ लहरा कर गला फाड़ कर चिल्लाया :

"दफा हो जाओ यहाँ से बुजदिलो।"

योगराज प्रभाकर
प्रधान संपादक

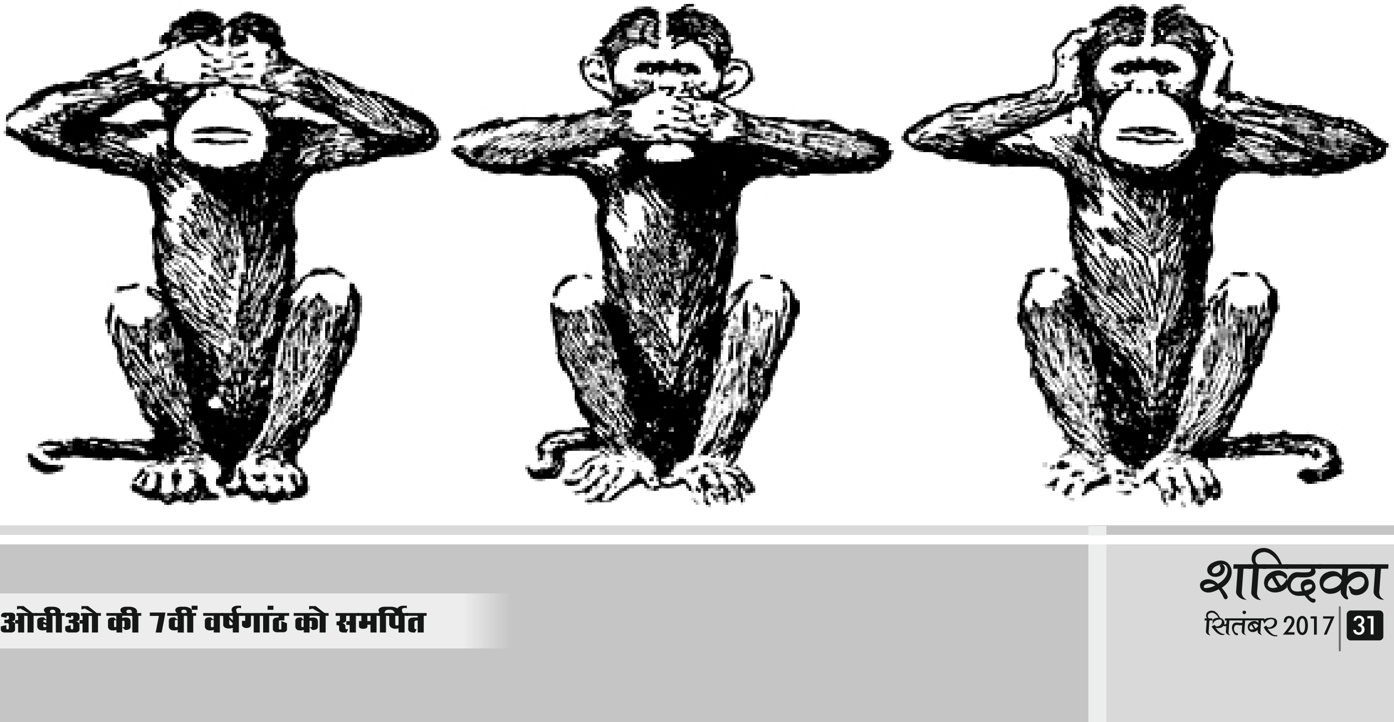

मूकदर्शक

सुनील वर्मा
जयपुर

"और बताओ भाई ! इस साल इन लोगों से क्या क्या संकल्प ले रहे हो"– दीवार पर लगे नये साल के कैलेंडर के दूसरे पन्ने ने पहले पन्ने से कहा।

"अरे काहे के नये संकल्प! वो ही घीसी पीटी सूची है इनकी" रोज कसरत करेंगे, सुबह जल्दी उठेंगे, बड़ो का आदर करेंगे। मुझे तो लगता है मेरा जनम ही ये सब सुनने को हुआ है।"

जनवरी की बात सुनकर खिड़की से आती हवा के साथ कैलेंडर के नीचे वाले पन्नें खीं खीं करके हँस पड़े।

"सुन भाई ! मेरे जाने के बाद तू इनको इनका संकल्प याद दिलाते रहना"–हवा से ऊंचे उठे जनवरी पन्ने ने वापस नीचे आकर फरवरी पन्ने को छूते हुए कहा।

"अररे! मैं और मार्च तो फिर भी इनके दिमाग में इनका संकल्प घुसाये रखते है पर सिर्फ हमारे याद दिलाने से क्या होगा नीचे वाले महिने इस काम में बिल्कुल सहयोग नही करते।"

फरवरी के लगाये आरोप का तीर अपनी ओर आता देख नीचे से जून अपने स्वभाव के अनुसार लगभग आग उगलते हुए बोला।"हुंह! खुद ने संकल्प लिया है तो याद भी खुद रखो। हमारी ठेकेदारी है क्या, वैसे भी ये लोग 'लाल रंग वाली तारीखों' को अलावा हमसे सुनते भी क्या हैं"

जुलाई–अगस्त ने भी जून का ही समर्थन किया।

सितम्बर अक्टूबर ने अपनी निष्क्रिय उपस्थिती के साथ बहस से किनारा कर लिया।

गरम होती बहस को संभालने के लिए कुछ शीतलता ओढे हुए नवम्बर ने कहा– "हम मूकदर्शक नही बनेगें और एक कोशिश कर के देख लेंगे अगर ये लोग मानेंगे तो।"

तय हुआ सबसे वरिष्ठ महीना दिसम्बर नव वर्ष में किये गये संकल्प को फिर याद दिलायेगा।

❖❖❖ ❖❖❖

जीवनदान

अन्नपूर्णा बाजपेई
कानपुर

सरला बिलख–बिलख कर रोये जा रही थी। उसके मुंह से शब्द न निकल रहे थे। बस आंखों से अविरल जल धारा बहती जा रही थी । बार–बार आसमान की तरफ हाथ उठा कर अपना आंचल फैलाती

" प्रभु ! मेरा जीवन ले ले , पर उसे मुझे लौटा दे जिसने अभी–अभी दुनिया में आंखे खोली है ।"

गिरती पड़ती किसी तरह अपनी सास के पास पहुंची,

"माई ! मुझे मेरी बच्ची लौटा दे, कुछ भी कर !!"

माई बेबस सी बैठी थी। क्या कर सकती थी? कभी मुंह न खोला था किसी के सामने। बाप और बेटा दोनों जिद्दी ! कि बेटी नहीं जिएगी। उनका कहना था बेटा कुल का दीपक होता है वो कैसा भी हो ? अपनी बच्ची आज भी भूली न थी । अक्सर कलेजा हूक उठता था। कुछ न कर पाने का दर्द था।

"नामुराद कहीं का!" माई मन ही मन बुदबुदायी। अचानक कुछ सोच कर उठी ।

"मरे !! तेरे जैसा कुलदीपक कहाँ से पैदा होगा अगर बेटी नहीं जिएगी, देखती हूँ मेरी पोती कैसी नहीं जिएगी, लगा हाथ!" दहाड़ उठी माई और लट्ठ उठा लिया।

"लगा हाथ !! अभी फोड़ती हूँ तेरा सिर !" सब सकते में आ गये, जिसने कभी जुबान न खोली थी वो घायल शेरनी की तरह दहाड़ रही थी ।

बेटे ने बहदुरी दिखाई

"का माई ! पगला गयी हो , चलो हटो किनारे । ये मर्दों का काम है हम सुलटा लेंगे । तू अंदर जा ।"

जोर का लट्ठ उसके पीछे जड़ दिया माई ने,

"परे हट ! बड़ा आया सुलटा लेंगे । ये हम औरतों का मामला है हम सुल्टाएंगे तू या तेरा बाप नहीं । चल सरला उठा बच्ची को !" गुस्से से चेहरा तमतमा रहा था । किसी की हिम्मत नहीं हुयी कि माई को रोके । क्योंकि जब बाढ़ बांध तोड़ती है तो विनाश लाती है । सरला ने लपक कर बच्ची को उठा लिया और अपने कलेजे से चिपका लिया।

❖❖❖ ❖❖❖

विकलांग

गणेश जी बागी
संस्थापक

नये सरकारी आदेश की प्रति बाबूराम के कार्यालय में पहुँच गयी थी। इस आदेश के अनुसार किसी भी विकलांग को लूला–लंगड़ा, भैंगा–काणा या गूंगा–बहरा आदि कहना दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया था। सरकार ने यह व्यवस्था दी है कि यदि आवश्यक हुआ तो विकलांग के लिए दिव्यांग शब्द का प्रयोग किया जाए। बड़े साहब ने मीटिंग बुला कर उस सरकारी आदेश को न केवल पढ़कर सुनाया था बल्कि सभी को सख्ती से इसे पालन करने की हिदायत भी दी थी। आज कार्यालय जाते समय बाबूराम यह सोचकर बेहद प्रसन्न हो रहा था कि आज से कोई भी उसे 'लंगड़ा बाबू' या 'लंगड़दीन' कहकर मजाक नहीं उड़ायेगा।

कार्यालय में प्रवेश करते ही एक सहकर्मी ने ऊँचे स्वर में आवाज लगायी,

"हैलो मिस्टर दिव्यांग !"

यह सुनते ही कार्यालय ठहाकों से गूंज उठा, बाबूराम को ऐसा महसूस हुआ कि उसकी पोलियो ग्रस्त टांग पर किसी ने जोर से हथौड़ा मार दिया हो।

❖❖❖ ❖❖❖

पल में तोला...

सुधीर द्विवेदी
कानपुर

पत्नी दरवाजा खोलकर बिना कुछ कहे–सुने रसोई में चली गयी थी। उसने दीवार घड़ी पर नजर डाली, छह बज चुके थे।

उसने झल्लाहट में सिर झटका और हाथ–मुँह धोने बाथरूम में घुस गया। पत्नी रसोई में घुसे–घुसे ही कनखियों से उसकी गतिविधियों पर बराबर नजर रखे हुए थी। बाहर आकर उसने जान–बूझ कर गीला तौलिया वहीं सोफे पर पटक दिया और जोर–जोर से चाय सुड़कने लगा।

पत्नी बात–बात पर उसको टोकती थी, पर आज कोई प्रतिक्रिया क्यों नहीं दे रही है? सोच–सोच कर अब उसे अजीब सी उलझन होने लगी। उसने टीवी ऑन कर लिया। थोड़ी देर में ही वह ऊब गया।

एकबारगी तो उसके मन में आया कि वह पत्नी से माफी मांग ले। कल के झगड़े में आखिर गलती तो उसकी ही थी। टीवी बंद करके वह रसोई की तरफ बढ़ा। पर फिर वह रुक गया ' मैं अपनी तरफ से पहल क्यूँ करूँ ?' उसका अहम जैसे रास्ता रोककर खड़ा हो गया था। वह वापस मुड़ा और सोफे में धंस गया।

अचानक उसने दराज में छुपाई सिगरेट निकालकर सुलगा ली।

"खबरदार ! जो इसे मुँह भी लगाया। मैं कल की अपनी कसम भूल जाऊँगी। फिर जितना चाहे उलाहना देना कि मैं बेवजह खीझती हूँ।" उसकी उंगलियों में फँसी सिगरेट छीनते हुए वह लगभग चिल्ला ई। अब तक शांत दिख रही पत्नी ज्वाकलामुखी की तरह भभक उठी थी।

"तुम्हें मेरी परवाह करने की जरूरत नहीं है!" उसने बेतकल्लुफी से जवाब दिया।

"पर मुझे है। मुझे खिझाने में तुम्हें बहुत मजा आता है न ?"' वह अपनी कमर में दोनों मुट्ठियाँ टिकाए बिल्कुल उसके सामने खड़े होकर चुनौती देती मुस्कुरा रही थी।

जवाब में उसने पत्नी को खींचकर अपने पास बिठा लिया। पत्नी के कंधे पर झूल आए बालों को उसने प्यार से परे सरकाया और शरारती नजरों से उसके चेहरे को निहारने लगा।

❖❖❖ ❖❖❖

सुख

ओमप्रकाश क्षत्रिय 'प्रकाश'
नीमच

रमन ने चकित होते हुए पूछा, "उस को पास बहुत सारा पैसा था। फिर समझ में नहीं आता है उस ने यह कदम क्यों उठाया ?"

"पैसा किसी सुख की गारण्टी नहीं होता है," मोहित ने दार्शनिक अंदाज में जवाब दिया।

"क्यों भाई ? क्या तुम नहीं चाहते हो कि तुम्हारे पास गाड़ी हो, बंगला हो, कार हो और नौकरचाकर हो ?" रमन ने अपनी इच्छा व्यक्त की।

"चाहने से क्या होता है ?" मोहित ने जवाब दिया, "यह सुख हमारी किस्मत में नहीं है। हम तो दो रोटी रोज कमाते और खाते हैं। किराए की गाड़ी और किराए का अच्छा मकान ही हमारी सब से बड़ी खुशी है।"

"यही तो मैं कह रहा हूं। उसे अपने भरेपूरे घर में क्या कमी लगी थी जो उस ने ऐसा किया है," रमन बोला," हम जिस चीज के लिए तरस रहे हैं, वह सब उस के पास थी।"

"सही कहते हो भाई ! वह जब जो चाहती थी, कर सकती थी। एक हुक्म देती और सभी नौकर उस के सामने हाजिर हो जाते थे। ऐसा सुख उसे कहां मिलेगा ?" मोहित ने पूछा।

"अरे ! जिस सुख की चाहत में वह अपने बच्चों और पति को छोड़ कर ड्राइवर के साथ भागी वह तो उसे मिलेगा ना?" रमन मुस्करा कर बोला तो मोहित ने जवाब में अपने दोनों कंधे उचका दिए।

❖❖❖ ❖❖❖

गरम भजिये

शेख शहजाद उस्मानी

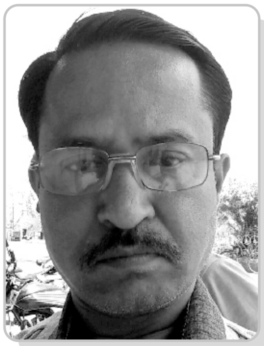

अपने दोनों बच्चों के ट्यूशन सेंटर चले जाने के बाद अकरम साहब घर के बगीचे में आराम कुर्सी पर पसरे हुए कुदरती ठंडी हवा के मजे ले रहे थे। तभी उनके मूड के मुताबिक कुछ भजिये और कड़क चाय का कप लेकर उनके नजदीक पहुंच कर उनकी बीवी ने कहा– "लीजिए जनाब, कुछ गरमा–गरम भी लीजिएगा।"

ऊपर से नीचे तक बीवी को निहारने के बाद उनके हाथ में ट्रे को गौर से देख कर वे बोले– "बहुत–बहुत शुक्रिया। लेकिन ये चाय किसी दूसरे कप में लाओ।"

"क्यों?"

"कितनी बार कहा है कि इस तरह के कप में मुझे चाय पीने का मजा नहीं आता!"

"क्यों?"

बेरुखी से ट्रे से चाय का कप उठाते हुए अकरम साहब बोले– "इसका आकार, इसके होंठ तो देखो जराय बिल्कुल तुम्हारी तरह?"

"तो इस उम्र में ये भी तुम्हें जीरो फिगर और पतले होंठों वाला चाहिए!" टेढ़ा सा मुंह बनाते हुए चाय का कप वापस ट्रे में रखकर बीवी रसोई की ओर जा ही रही थी कि एक और ताना सुनाई दिया।

"सुनो, फ्रिज की बोतलें पुरानी हो गई हैं। नई बोतलें तुम मत ख़रीदना। इस बार मैं ख़ुद लाऊंगा। तुम्हारे दिमाग में तो एक ही आकार–प्रकार बसा हुआ है!"

"क्या मतलब?"

"तुम नहीं समझोगी ये सब साइक्लोजी की बातें हैं!"

"किसकी साइक्लोजी? मेरी या तुम जैसे मर्दों की?"

"यही समझ लिया होता, तो अपने आप को फिट और मेन्टेन करके रखतीं न!" उन्होंने बीवी पर आदतन एक और तंज कसा।

"अपने आप को मेन्टेन करूं या तुम्हारे ऐश–ओ–आराम को मुझे भी तो कुछ चाहिए!" बड़बड़ाती हुई बीवी रसोई में चली गई। अकरम साहब मोबाइल के चित्रों पर आंखें गड़ाए गरम भजियों के मजे ले रहे थे।

❖❖❖ ❖❖❖

अंतिम श्रृंगार

चंद्रेश कुमार छतलानी
उदयपुर

उसकी दाढ़ी बनाई गयी, नहलाया गया और नये कपडे पहना कर बेड़ियों में जकड़ लिया गया। जेलर उसके पास आया और पूछा, "तुम्हारी फांसी का वक्त हो गया है, कोई आखिरी इच्छा हो तो बताओ।"

उसका चेहरा तमतमा उठा और वो बोला, "इच्छा तो एक ही है–आजादी। शर्म आती है तुम जैसे हिन्दुस्तानियों पर, जिनके दिलों में यह इच्छा नहीं जागी।"

वो क्षण भर को रुका फिर कहा, "मेरी यह इच्छा पूरी कर दे, मैं इशारा करूँ, तभी मुझे फाँसी देना और मरने के ठीक बाद मुझे इस मिट्टी में फैंक देना फिर फंदा खोलना।"

जेलर इस अजीब सी इच्छा को सुनकर बोला, "तू इशारा ही नहीं करेगा तो?"

वो हँसते हुए बोला, "आजादी के मतवाले की जुबान है, अंग्रेज की नहीं...."

जेलर ने कुछ सोचकर हाँ में सिर हिला दिया और उसे ले जाया गया। उसके चेहरे पर काला कपड़ा बाँधा गया, उसने जोर से साँस अंदर तक भरी, फेंफड़े हवा से भर गए, कपड़े में छिपा उसका मुंह भी फूल गया। फिर उसने गर्दन हिला कर इशारा किया, और जेलर ने जल्लाद को इशारा किया, जल्लाद ने नीचे से तख्ता हटा दिया और वो तड़पने लगा।

वहां हवा तेज चलने लगी, प्रकृति भी व्याकुल हो उठी। मिट्टी उड़ने लगी, जैसे उसका सिर चूमना चाह रही हो, लेकिन काले कपड़े से ढके उसके चेहरे तक पहुँच न सकी। उसकी साँसों की गति हवा की गति के साथ मंद होती गयी, और कुछ ही क्षणों में उसका शरीर शांत हो गया। उसे उतार कर धरती पर फैंक दिया गया, वो जैसे करवट लेकर सो रहा था। फिर उसके फंदे को खोला गया, फंदा खोलते ही उसके फेंफडों में भरी हवा तेजी से मुंह से निकली और धरती से टकराई, मिट्टी उड़कर उसके चेहरे पर फैल गयी। आखिर देश की मिट्टी ने उसका श्रृंगार कर ही दिया।

❖❖❖ ❖❖❖

फूल चोर

नीता कसार
जबलपुर

मंदिर में वर्मा जी की थाली में अपने बागीचे के विदेशी फूल देखकर वृंदा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे पूजा की थाली हाथ में पकडे मूर्ति के सामने खड़े हुए थे, जिसे देखकर वृंदा के चेहरे पर अविश्वास और क्रोध के मिश्रित भाव उभर आए।

दरअसल बचपन से ही वृंदा को जूनून की हद तक बागवानी का बेहद शौक था। तरह तरह से रंग सजावटी पौधों, हरी भरी घास, रंग बिरंगे फूलों तथा विभिन्न प्रकार के बेल बूटों से भरा बगीचा पूरी कॉलोनी में चर्चा का विषय बन चुका था। जो भी देखता, बगीचे और वृंदा की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता। उनके पड़ोसी वर्मा जी का बगीचा भी कुछ कम नहीं था, किन्तु लोगों द्वारा वृंदा की इतनी प्रशंसा करना उन्हें फूटी आँख नहीं सुहाता था। पिछले कुछ दिनों से बगीचे में खिले हुए दुर्लभ फूल गायब होने शुरू हो गए जिनके बीज विदेश से मंगवाए गए थे। आज वृंदा जब मंदिर जाने के लिए निकली तो अपने फूल विहीन उन पौधों को देख तड़प कर रह गई।

मंदिर में वृंदा को देखते ही वर्मा जी चौंके, लेकिन स्थिति को भांपते हुए वह तेजी से मूर्ति की तरफ बढे। वृंदा से नजरें चुरा कर उन्होंने बहुत हड़बड़ी में फूल अर्पित किये, जल चढ़ाया। किन्तु जैसे ही भगवान शिव की तरफ देखा तो वह कांप उठे। आज भगवान शिव के चेहरे पर निर्मल मुस्कराहट के स्थान पर क्रोध था, और उनके माथे पर तीसरी आँख उभर रही थी। शिव का यह रौद्र रूप देखकर वर्मा जी के सूखे हलक से केवल यही निकल पाया :

'सॉरी वृंदा !'

❖❖❖ ❖❖❖

मायका

सीमा सिंह
कानपुर

"रिक्शा रोकना, जरा!"

भाई को राखी बांधकर वापस लौटते समय गुमसुम नंदिनी अचानक बोल पड़ी तो पतिदेव चौंक उठे। "क्या हुआ, कुछ भूल आई क्या?"

पति कुछ और बोलते, तब तक रिक्शा रुक गया था। किसी जादू के वशीभूत सी नंदिनी रिक्शे से उतरी, और कुछ ही पलों में वह रेलवे पटरी के उस पार, बरगद से बिल्कुल सटे हुए एक खाली प्लॉट में खड़ी थी।

अवाक पति भी लगभग भागते हुए उसके पीछे–पीछे वहां आ पहुंचा। "क्या बचपना है, नंदिनी?" घड़ी की तरफ नजर डालते हुए पति ने झुँझलाते हुए कहा, "ट्रेन छूट जाएगी... समय हो गया है!"

पर, नंदिनी तो जैसे किसी और लोक में थी। वह वहीं नीचे बैठ गयी, और दोनो हाथों से जमीन सहलाने लगी। उसकी इस हरकत को देख कर अब पति का पारा चढ़ गया।

नंदिनी को झंझोड़ते हुए भड़का "तुम ये कर क्या रही हो?!"

जवाब में नंदिनी की आँखे भर आईं। अब भी वह कुछ न बोली बस जमीन सहलाती रही।

"अचानक तुम्हें हो क्या गया है, नंदिनी?" पति की आवाज में परेशानी थी।

"ये... ये वही प्लॉट है जो बाबा के बाद हम दोनों बहनों को ब्याहने के लिए... भैया को बेचना पड़ा था," नंदिनी बमुश्किल बोल पाई।

उसका जवाब सुनकर पति सकपका गया। वह कुछ बोला तो नहीं, पर नंदिनी की बांह पर से उसकी पकड़ कमजोर जरुर हो गई।

"माँ यहाँ अपना घर बनाना चाहती थी।" एकाएक नंदिनी ने वहीं पास पड़ी हुई सूखी लकड़ी उठाई, और प्लॉट के दूसरे छोर पर जा खड़ी हुई। पति हतप्रभ उसे उस ओर जाते हुए देखता रह गया।

"ये, यहाँ पर माँ की रसोई... यहां पूजाघर... ये माँ–बाबा का कमरा, ये भैया का कमरा!" प्लॉट के छोर से लकड़ी से भुरभुरी मिट्टी पर नक्शा उकेरती हुई वह पीछे खिसकती आ रही थी। "और ये रहा हम दोनों बहनों का कमरा..." इससे आगे वह कुछ कहती, कि पति से टकरा जाने से वह लड़खड़ा गयी।

पति ने फौरन उसे अपनी बाँहो में सम्हाल लिया। "चलो, नंदिनी, यहां से चलो। अब न माँ है, न बाबा रहे। और ये प्लॉट भी अब तो अपना नहीं है।" पति ने नंदिनी को अपने सीने में समेट लिया।

"सब समझती हूँ, पर... जरा सा रुक जाओ, न ! दो पल... बस दो पल इस मायके का सुख और ले लूँ।" बुदबुदाते हुए, दोनों मुट्ठियों में प्लॉट की मिट्टी समेटे नंदिनी की नजरें जमीन में उकेरे नक्शे में मायका तलाशती जा टिकी।

❖❖❖ ❖❖❖

जवान बच्चे

वीरेन्द्र वीर मेहता
दिल्ली

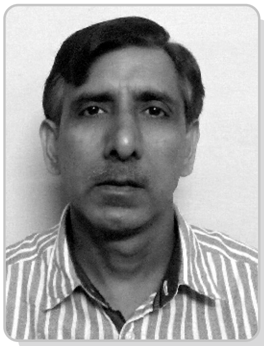

"कम्मो! जरा इधर तो आ, तूने अचानक काम पर आना कयों बंद कर दिया?" मिसेज माधवी ने बालकनी की खिड़की से ही गली में गुजरती अपनी काम वाली बाई को आवाज लगाई।

"जी मेम साहब! वो क्या है कि अब हम आप के यिहाँ काम नही करेगें।" कम्मो भी गली से ही लगभग चिल्लाती हुयी बोली।

"क्यों कहीं और ज्यादा पैसे मिलने लगे या पैसो की जरूरत नही रही।" मिसेज माधवी की आवाज में कटाक्ष था।

"नहीं मेमसाहब, बस ऐसे ही...... बच्चे जवान हो गये ना।"

"तेरे बच्चे ?"

"नही नही मेमसाहब ! मेरे नहीं, आपके बच्चे जवान हो गये है।"

मिसेज माधवी की खिड़की खटाक से बंद हो चुकी थी।

❖❖❖ ❖❖❖

फर्ज़

जानकी वाही बिष्ट
नोएडा

“कई दिन से नजर है तुझ पर मेरी, ये क्या बाँटता फिर रहा है इनको? गन्दगी फैला रहा है यहाँ।” कहते हुए मजबूती से उसका हाथ पकड़ लिया पुलिस वाले ने।

“ अरे ! मेरा हाथ छोड़ो ,इसमें क्या बुराई है ?मैं अपनी संस्था की ओर से ये काम कर रहा हूँ।”

“ चल ये सफाई अब थाने चलकर ही देना ,तुम जैसे लोग ही समाज को बिगाड़ रहे हैं।”

“आय –हाय थानेदार साहब इस भलेमानुष को क्यों परेशान कर रहे हैं। छोड़ दीजिए इनको।” झुण्ड को देख और थानेदार, सुनकर सिपाही थोड़ा नरम पड़ा।पर माना नहीं उसे थाने पहुंचाकर ही दम लिया।

“साहब ! ये आदमी कई दिन से किन्नरों को ये चीज बाँट रहा है।” कहते हुए सिपाही ने उसके झोले से ढेर सारे पैकेट निकाल कर इंस्पेक्टर की मेज पर रख दिए।

ढेर देखते ही इंस्पेक्टर की आँखें चौड़ी हो गई।

“क्यों बे ! ये क्या है ?” फाड़ खाने वाली आवाज थी उसकी।

“सर !जो भी है आपके सामने ही है।”

“मुझे सिखा रहा है ?तुझे, मैं अँधा दिखाई दे रहा हूँ? तुझे शर्म नहीं आती किन्नरों के बीच समलैंगिगता फैलाते हुए ?” इंस्पेक्टर ने उसे घुड़का।

“सर ! फैला नहीं रहा हूँ, वे लोग अनजान मौत की गलियों में दौड़ रहे हैं ,हम तो उन लोगों की जान बचाने की कोशिश कर रहे हैं।”

“तुम क्या डॉक्टर हो ?”

“सर, हमारे न बाँटने से सच्चाई बदल तो नहीं जायेगी। हमारी संस्था तो उन्हें एच .आई.वी. के प्रति जागरूक करने की पहल कर रही है।”

“हूँ उ उ...”

इंस्पेक्टर ने हिकारत से ढेर को घूरते हुए कहा।

“सर ! वे भी हमारे ही भाई बन्धु हैं। हम तो अपना फर्ज अदा कर रहे हैं जिससे वे लोग अँधेरी गलियों से बच सकें।”

“वे बच्चे हैं क्या ?जो उन्हें समझाया जाय।समाज उन्हें पूछता नहीं और ये हैं कि ...” इंस्पेक्टर की आवाज में अब व्यंग था।

“सर , अगर वे समाज से तिरष्कृत तो क्या हम भी शुतुरमुर्ग की तरह आँख बन्द कर लें।”

❖❖❖ ❖❖❖

दिशाहीन

नयना आरती कानिटकर
भोपाल

चौराहे पर ‘स्टाप’ सिग्नल को देख गाड़ी रोकी ही थी कि तभी पास ही एक एक्टिवा भी खचाक से आकर रुकी तो सहसा ध्यान उसकी तरफ मुड़ गया, उस पर सवार दोनो लड़कियों ने अपने आप को आपस मे कस के पकड़ रखा था। कंधे से उतरती–झुलती टी–शर्ट और जांघे दिखाती पेंट के साथ पिछे वाली के हाथ में जलती सिगरेट देख वो दंग रह गई।

एक कश खुद लगा छल्ले आसमान मे उडा दिये और आगे हाथ बढा ड्रायविंग सीट पर बैठी लड़की के होंठो से लगा दिया । उसने भी जम के सुट्टा खींचा, तभी सिग्नल के हरे होते ही वे हवा से बातें करते फुर्र हो गई। उन्हें देख संवेदना जडवत हो गई थी, पिछे से आते हॉर्न की आवाजों से मानो वो अवसाद से बाहर आयी ।

पास से गुजरने वाला हर शख्स व्यंग्य से उसे घुरते निकलता और कहते आगे बढ़ता कि गाड़ी चला नही सकती तो...

“अरे! लेकिन देखो तो इन लड़कियों को। सारी शर्म हया बेच खायी है इन लोगो ने। इज्जत मिट्टी मे ... है।” सुलभा गुस्से मे थरथरा उठी।

“अरे ! आंटी गाड़ी आगे बढाओ।” पीछे से एक नौजवान चिल्ला रहा था।

ये सब तो अब आम बात है। अब लड़कियाँ भी कहा लड़कों से कम है।

लघुकथा विधा से सबंधित श्री योगराज प्रभाकर जी का रश्मि तारिका द्वारा लिया गया साक्षात्कार

लघुकथा के बारे में यूँ तो लगभग सभी बातें आपके आलेख “लघुकथा विधा तेवर और कलेवर” से स्पष्ट हो गई हैं किन्तु अभी भी कई प्रश्न ऐसे हैं जोकि अनुत्तरित है। उन्हीं के बारे में आपकी राय जानना चाहूँगी, इसी सिलसिले में मेरा पहला प्रश्न है कि लघुकथा का उद्देश्य क्या है ?

लघुकथा का उद्देश्य है किसी समस्या या विसंगति की बारीकी से जांच पड़ताल करके उसे उभार कर सामने लाना।

क्या यह आवश्यक है कि लघुकथा ने जिस समस्या या विसंगति की तरफ ध्यान आकर्षण किया है, उसका समाधान भी बताए?

जैसा कि आपको ज्ञात ही है कि लघुकथा एक एकांगी-इकहरी लघु आकार की एक गद्य बानगी है जिसमे विस्तार की अधिक गुंजाइश नहीं है। अत इसका मुख्य उद्देश्य केवल किसी बीमारी को डायग्नोज करने का है, नाकि उसका उपचार करने का। वैसे लघुकथा यदि लघुकथा के द्वारा किसी समस्या का समाधान बताया जा सके, तो कोई बुराई नहीं है। किन्तु ध्यान रखना पड़ेगा कि ऐसा करते हुए लघुकथा कहीं नारा ही बनकर न रह जाए।

क्षमा करें सर ! लघुकथा के उद्देश्य को लेकर आपकी बातों में मुझे विरोधाभास नजर आ रहा है। एक तरफ तो आप कह रहे हैं कि इसका उद्देश्य केवल बीमारी को डायग्नोज करना है, मगर साथ ही आप यह भी कह रहे हैं कि लघुकथा उस बिमारी का उपचार भी कर सकती है।

प्रभाकर मैं ऐसे ही सवाल की उम्मीद ही कर रहा था आपसे रश्मि जी। क्या इस बात को बेहतर ढंग से स्पष्ट करने के लिए आपसे कुछ पूछ सकता हूँ ?

जी जरूर।

मान लीजिए आप बाजार जा रही हैं, और रास्ते में आपके सामने किसी को दिल का दौरा पड़ गया । आप क्या करेंगी?

उसको जल्दी से जल्दी ह०स्पिटल पहुँचाने का प्रयत्न करुँगी ।

लेकिन हो सकता है कि हॉस्पिटल पहुँचने से पहले ही उसकी मृत्यु हो जाए, तो आपने उसका ऑपरेशन क्यों नहीं किया ?

जी मैं ऑपरेशन कैसे कर सकती हूँ? मैं कोई डॉक्टर थोड़े ही हूँ । एक अच्छे नागरिक की तरह मेरा फर्ज है उसको हॉस्पिटल पहुँचाना ।

बिलकुल यही बात लघुकथा पर भी लागू होती है रश्मि जी । वह भी हमारी ही तरह एक साधारण किन्तु जिम्मेवार नागरिक है जिसे ऑपरेशन करना तो नहीं आता किन्तु वह रोगी को सही समय पर सही स्थान पर पहुँचाने का प्रयत्न अवश्य करती है। लेकिन दिल के दौरे की बजाय यदि कोई व्यक्ति गर्मी के कारण चक्कर खा कर गिर जाए तो उसको पानी पिलाकर तो कोई भी उठा सकता है न?

लघुकथा में कथानक का चुनाव कैसे किया जाए?

कथानक हमारे आस-पास प्रचुर मात्रा में बिखरे पड़े हैं। आवश्यकता है अपनी आँखें और कान खुले रखे जाएँ। लेकिन, कथानक वही चुने जाएँ जिनमे नयापन हो। कथनी-करनी में अंतर वाले कथानक बेहद उबाऊ हो चुके हैं उनसे बचना चाहिए।

हास्य रस का लघुकथा में क्या महत्त्व है?

साहित्य में हास्य रस का यूँ तो बहुत महत्व है, किन्तु मेरा मानना है कि हास्य रस लघुकथा के स्वभाव के लिए मुफीद नहीं है । लघुकथा में हास्य को यदि कटाक्ष बना कर प्रस्तुत किया जाए तो रचना का प्रभाव बहुगुणित हो जाता है । जबकि हास्य इसे लतीफे की श्रेणी में भी ला खड़ा कर सकता है। इतने दशक बाद भी परम्परावादी आलोचक लघुकथा को चुटकुला या चुटकुले जैसी विधा ही मान रहे हैं, ऐसे में हमारा उत्तरदायित्व बन जाता है कि लचर हास्य को लघुकथा से दूर ही रखें।

क्या सम-सामयिक घटनायों को लघुकथा का विषय बनाना चाहिए? तथा ऐसे विषयों पर लघुकथा लिखते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

सम-सामयिक घटनायों पर लघुकथा कहना थोड़ा जोखिम भरा कार्य होता है । क्योंकि आवश्यक नहीं कि हर सामयिक घटना कालजयी ही हो । सातवें दशक में रंगा-बिल्ला द्वारा किया गया हत्या गीता चोपड़ा हत्या काण्ड आज कितनो को याद है ? क्या आरुषि हत्याकांड की गूँज आज वैसी है जो कुछ साल पहले थी? लेकिन इसके विपरीत 26-11 का मुंबई काण्ड एक ऐसी घटना है को भारतीय जनमानस के दिल-ओ-दिमाग में सदैव ताजा रहेगी ।

पौराणिक पात्रें /सन्दर्भों को लेकर क्या लघुकथा कही जा सकती है ?

बिल्कुल कही जा सकती है, बल्कि बहुत सी लघुकथाएँ कही भी गई हैं। वस्तुत हमारी पुरातन जातक कथायों, पंचतन्त्र, तथा हितोपदेश आदि से ही हमारी लघुकथा के बीज पनपे हैं। हमारा धार्मिक एवं पौराणिक साहित्य ऐसी हजारों घटनायों/प्रसंगों से भरा पड़ा है जिनको आधार बनाकर लघुकथा रची जा सकती है। आद० रामकुमार घोटड जी के संपादन में एक लघुकथा संग्रह ‘पौराणिक सन्दर्भ की लघुकथाएँ’ इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस संग्रह में नए पुराने

रचनाकारों की 100 से अधिक लघुकथाएँ हैं । हालाकि सभी लघुकथाएँ मार्केदार तो नहीं कही जा सकतीं, किन्तु आपके प्रश्न के आलोक में यह एक पठनीय पुस्तक है।

पौराणिक पात्रें / सन्दर्भों पर लघुकथा कहते हुए किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

देखिए, भारत में धर्म एक संवेदनशील विषय माना जाता है। धर्म के नाम पर ऐसे लोग भी पूँछ उठाकर खड़े हो जाते हैं जिन्हें न इसका कोई ज्ञान है और न ही अच्छी जानकारी। अत ऐसे विषय पर कलम आजमाई करते हुए एक रचनाकार को बेहद सचेत और चौकन्ना रहने की आवश्यकता है । अत: ध्यान यह रखना अति आवश्यक है कि किसी की धार्मिक भावना को ठेस न पहुंचे एवं किसी पूज्यनीय की गरिमा के विरुद्ध कोई अशोभनीय शब्द न बरता जाए।

लघुकथा में फैन्टेसी तत्व की कितनी गुंजायश है? और इसको प्रयोग करना जायज है ?

यह गजब का प्रश्न पूछा है आपने रश्मि जी। ऐसी बात या चीज जो कभी न देखी गई हो या घटित ही न हुई हो, उसके बारे में कल्पना करके कोई बात करना फेंटेसी कहलाता है। इसके कई रुप हो सकते हैं जिसमे मुख्यत: कल्पना का पुट प्रधान होता है । उदाहरण के लिए ड्रैगन अथवा येती, इन्हें कभी देखा तो नहीं गया किन्तु यह दोनों पात्र मानव कल्पना में मौजूद है। अब यह तो रही पात्रें की बात, फेंटेसी में कई ऐसी स्थितियों पर भी लघुकथा कही जा सकती है। यह कल्पनाशीलता की उच्चतम उड़ान है, जो हर रचनाकार की निजी कल्पना पर निर्भर करती है। मेरा मानना है कि फेंटेसी को विषय बनाकर बेहद रुचिकर लघुकथाएँ कही जा सकती हैं।

फेंटेसी पर आधारित लघुकथा अथवा कथानक के बारे में यदि उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें, तो समझने में और भी सुविधा होगी । वैसे क्या आपने भी फेंटेसी पर आधारित लघुकथाएँ लिखी हैं?

रश्मि जी ! मैंने भी कुछ लघुकथाएँ इस तत्व पर आधारित लिखी हैं, किन्तु उनकी चर्चा यहाँ संभव नहीं। आपने इसके उदाहरण की बात की, तो सिकंदर-पोरस वाले प्रसंग के बारे में बात करना चाहूँगा। युद्ध में पोरस को पराजय का का मुँह देखना पड़ा था, किन्तु सिकंदर के दरबार में महाराज पोरस ने जो कहा उस कारण पोरस आज भी हमारे हमारे नायक हैं, यह हकीकत भी है और इतिहास भी। लेकिन कल्पना करें कि युद्ध महाराज पोरस ने जीता और सिकंदर को बंदी बनाकर दरबार में पेश किया होता तो क्या होता? महाराज पोरस का क्या रवैया होता और सिकंदर की मन स्थिति क्या होती? सिकंदर की पराजय और महाराज पोरस की विजय ही फेंटेसी है । रामायण के प्रसंग के सन्दर्भ में कैकेयी द्वारा मंथरा की बात न मानना फेंटेसी है। महाभारत में पाण्डवों के स्थान पर द्रौपदी द्वारा जुआ खेलने की कल्पना फेंटेसी है ।

एक आदर्श लघुकथा में पात्रों की संख्या का भी कोई महत्त्व है? यदि हाँ, तो पात्रें अधिकतम संख्या कितनी होनी चाहिए?

प्रभाकर कोशिश की जानी चाहिए कि लघुकथा में 2-3 अधिक पात्र न हों। क्योंकि आधे सफे की अथवा १५ पंक्तियों की लघुकथा में यदि 5-7 पात्र हों तो पाठक उनके नामों में ही उलझा रह जाएगा तथा कथा कहीं खो ही जाएगी।

क्या लघुकथा में पात्रें के नाम का भी कोई महत्व है क्या?

वैसे तो लघुकथा में पात्रों के नाम से बारे में मेरा निजी मत यह है कि नायक का नाम रमेश न होकर सुरेश अथवा नीलेश हो तो कोई फर्क नहीं पड़ता। वैसे पात्रें की सामाजिक पृष्ठभूमि, आयु, और हैसियत एवं व्यक्तित्व आदि को देखते हुए उनके सही नाम का चुनाव भी लघुकथा में बहुत आवश्यक है। कई बार किसी विशेष स्थिति में पात्र का मात्र नाम ही एक जबरदस्त कटाक्ष पैदा करने में सफल रहता है, जैसे किसी कानी महिला का नाम सुलोचना, किसी बेसुरी गायिका न नाम कोकिला, किसी अधर्मी का नाम धर्मदास किसी देशद्रोही का नाम देशदीपक आदि।

आपने अपने एक आलेख में कहा था कि लघुकथा में अधिकतम शब्द सीमा 300 होनी चाहिए। कुछ लोगों को आपकी इस बात पर बहुत एतराज है।

एतराज तो कईयों को मेरे जिंदा होने पर भी हो सकता है रश्मि जी, क्या किया जा सकता है? आप जिस आलेख का जिक्र कर रही हैं, शब्दसीमा के प्रश्न पर सबसे पहले मैंने यह कहा था कि लघुकथा का आकार उसके प्रकार पर निर्भर करता है। दरअसल शब्द सीमा के सम्बन्ध में मैंने यह कहने का प्रयास किया था कि एक आदर्श लघुकथा में लगभग 300 शब्द होने चाहिएं । लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सौ पचास शब्द कम या ज्यादा होने से लघुकथा पर कोई प्रभाव पड़ेगा। मैं आपको अनगिनत ऐसे उदाहरण दे सकता हूँ जहाँ जाने माने लघुकथाकारों ने 100-150 शब्दों में ही वो बात पैदा कर दी कि उनकी रचनाएँ कालजयी हो गई। मंटो के बहुत से सियाह हाशिये इसका जिंदा जागता प्रमाण है। इसके इलावा आप ओल्ड लघुकथाडॉटकाम देखें, वहां लघुकथा के स्तम्भ माने जाने वाले 70-75 लोगों ने जिनमे लघुकथा विधा के पुरोधा सर्वश्री परस दासौत, बलराम अग्रवाल, सुभाष नीरव, सुकेश साहनी, भागीरथ, डॉ० सतीश दुबे, डॉ० अनूप सिंह, डॉ० राम कुमार घोटड, निरंजन बोहा, श्याम सुन्दर दीक्ति, श्याम सुन्दर अग्रवाल, अशोक भाटिया, कमलेश भारतीय तथा हिंदी लघुकथा के प्रथम पुरुष डॉ० सतीश राज पुष्करणा आदि शामिल हैं, ने अपने मनपसंद लघुकथाकारों की कालजयी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। लगभग सभी लघुकथाएँ लगभग तीन साढ़े तीन शब्दों में ही कही गई हैं, मजे की बात यह है कि वे रचनाएँ भी सुप्रसिद्ध लघुकथाकारों की हैं। अत: जब कुछ लोग सिर्फ कहने के लिए ही कहते हैं तो वे अपरोक्ष रुप में इन पुराधाओं के कहे को मानने से इनकार कर रहे होते हैं। अत: ऐसे अहमकों को यह सन्देश अवश्य देना चाहूँगा कि यदि शक्ल और अक्ल खराब भी हो तो कम से कम बात तो अच्छी की ही जा सकती है न?

आप का मानना है कि लघुकथा विसंगति की कोख से उत्पन्न होती है। तो क्या यह आवश्यक है कि हर लघुकथा किसी नकारात्मक विषय पर ही लिखी जाए?

यह केवल मेरा ही नहीं लघुकथा के पुराधाओं का भी मत है। देखिए, कहा जाता है कि कोई स्थिर समाज कालजयी साहित्य को नहीं रच सकता। जहाँ विसंगति होगी, सार्थक साहित्य के बीज वहीं फूटेंगे। आपको याद होगा कि इमरजेंसी के बाद अस्सी के दशक की शुरुआत में भारत में समानांतर सिनेमा का दौर चल रहा था। उस जमाने की बनी फिल्में अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी सराही गई थीं। लेकिन लगभग उस उसी कालखंड में स्थिर और समृद्ध यूरोप और विशषकर स्कैंडेनेवियन देशों में क्या हो रहा था? वहाँ पोर्न फिल्म इंडस्ट्री खूब धड़ल्ले से चल रही थी । यह पोर्न इंडस्ट्री उस समय क्यों अपने शबाब पर नहीं थी जब पूरा यूरोप द्वितीय विश्वयुद्ध की चपेट में था ? क्योंकि वहां अस्थिरता और विसंगतियाँ थीं, तो उस समय वहां कालजयी फिल्मों और साहित्य का सृजन हो रहा था। वैसे यह किस ने कह दिया कि विसंगतियों केवल नकारात्मकता ही देती हैं? सबसे महत्वपूर्ण बात, हर विधा की अपनी सीमा, गरिमा, महिमा और ऊर्जा होती है, अपना स्वाभाव और स्थान होता है जिसे अक्षुण्ण रखा जाना चाहिए। आप जानती ही हैं कि शादी-ब्याह के मौके पर सुहाग गाया जाता है, क्या यही सुहाग किसी की मृत्यु के समय गया जा सकता है ? आरती देवी देवतायों की स्तुति हेतु गाई जाती है, अब कोई कोई व्यक्ति सनी ल्योन की आरती गाने लगे तो उसको क्या कहा जाएगा? सुहाग गाना उल्लास और प्रसन्नता का प्रतीक है जबकि आरती श्रद्धा की प्रतीक है। जल का स्वभाव शीतल तथा अग्नि का गर्म है, यदि ये विशेषताएं उनसे अलग करने की चेष्टा की जाए तो क्या बगैर पानी और अग्नि अपना नैसर्गिक स्वभाव न खो देंगे ? लघुकथा का उद्देश्य पाठक के मन मस्तिष्क को उद्वेलित करना तथा ततैया के अचानक डंक की तरह स्तब्ध कर देना माना गया है अत यह उसका नैसर्गिक स्वाभाव हुआ। यदि कोई रचनाकार इसी स्वाभाव को लेकर ही प्रश्न उठता हो तो उसकी समझ पर अफसोस ही किया जा सकता है।

कुछ लोग लघुकथा के परंपरागत नियमो को रुढ़िवाद कह कर धत्ता बताने में लगे हुए हैं, आप इस विषय में क्या कहना चाहेंगे ?

जिसे लोग रुढ़िवाद की संज्ञा दे रहे हैं वास्तव में वह नियम और अनुशासन हैं जिनका साहित्य की हर विधा में पालन किया जाता है। हर विधा की कुछ मानक स्पेसिफिकेशंस होती हैं, जिनसे इतर जाने पर रचना के भटक जाने का खतरा बना रहता है। उदाहरण के लिए अगर कोई ढ़ियाँ तोड़ने के नाम पर किसी त्रिपदी को दोहा कहने पर अमादा ही हो जाए, तो सिवाय उसकी कम-अक्ली पर हंसने के क्या कुछ और किया जा सकता है?

ऐसे कौन से महत्वपूर्ण विषय हैं जिनसे लघुकथा अभी अछूती है ?

प्रभाकर बहुत से विषय हैं जिनपर अभी लघुकथाकारों का ध्यान नहीं गया है। अब समय आ गया है कि हम ऐसे विषयों पर भी कलम आजमाई करें जो अंतर्रराष्ट्रीय हैंप, ग्लोबल वार्मिंग, विश्व मंडीकरण, प्राकृतिक स्रोतों का अंधाधुंध दोहन, समलैंगिकता, पश्चिमी देशो का भारत के प्रति रवैया एवं दुनिया भर में धार्मिक अल्पसंख्यकों पर बढ़ते अत्याचार आदि बहुत से ऐसे विषय हैं जो न केवल हिंदी लघुकथा को कथानक के स्तर पर एक नयापन ही देंगे, बल्कि इसे अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर भी पहचान दिला सकते हैं।

यह पेम्पेरिंग हमें कई बार गुमराह कर जाती है, इससे कैसे बचें?

इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं है रश्मि जी। हमें समझना होगा कि ऐसा करने वाले की मंशा क्या है उनका उद्देश्य क्या है । सोशल मीडिया पर यह चीज काफी देखने को मिलती है। कुछ लोग जानबूझकर ऐसा करते हैं कि ताकि वे अपना एक अलग दल बना सकें । बहुत से रचनाकार ऐसे भी हैं जो मेसेज बॉक्स में आकर आशीर्वाद मांगते हैं। बहुत से लोग ऐसे भी मिलेंगे जिन्हें लघुकथा विधा से कुछ लेना देना तो नहीं है किन्तु रचनाकार से नजदीकी के कारण वे ऐसा करते हैं । कुछ लोग ऐसे भी हैं (क्षमा सहित) जोकि सिर्फ चुनिन्दा महिलायों की पोस्ट पर ही दृष्टिगोचर होते हैं।

निजी तौर पर मैं रचना हल्की होने के बावजूद भी नवोदित रचनाकारों की पीठ थपथपा दिया करता हूँ। इस बात पर "किन्तु" किया जा सकता है, लेकिन इसके पीछे मेरी एक सोच कम कर रही होती है। आपने चाणक्य का वह संस्कृत श्लोक अवश्य सुना होगा कि 'लालयेत पञ्च वर्षाणि. दशा वर्षाणि ताडयेत. प्रा.तेतु षोडशे वर्षे पुत्र मित्रवदाचरेत' अर्थात पहले पाँच वर्ष तक बच्चे को लाड़-प्यार किया जाना चाहिए, अगले दस बरस तक बच्चे को लाड़ के इलावा ताड़ भी देना चाहिए। किन्तु 16 बरस का होता ही उस पुत्र को एक मित्र की भांति समझना चाहिए। इसीलिए हर नया रचनाकार लिहाज का हकदार होता है, कोई चाहे तो उसको पेम्प्रिंग कहे या कुछ और। अब रही बात बचने की तो मैं अर्ज करना चाहूँगा कि इसका एकमात्र उपाय है अध्ययन, केवल अध्ययन से एक रचनाकार को अपने सही कद का अनुमान हो जाता है, सही गलत की पहचान हो जाती है। अध्ययन से अनुभव प्राप्त होता है, और अनुभव प्राप्ति के बाद ही भ्रम की स्थिति दूर हो सकती है।

लघुकथा के वास्तविक स्वरूप को जो बिगाड़ रहे हैं, उसके विरुद्ध आवाज कौन उठाएगा?

रश्मि जी, किसी विधा के मूल स्वरुप से वक्ती खिलवाड़ तो किया जा सकता है, किन्तु उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। ऐसे लोगों को इस विधा के जानकार ही सही मार्ग पर ला सकते हैं । इस विधा के जानकार केवल वही लोग नहीं हैं जो इस पर दशकों से काम कर रहे हैं, बल्कि कोई भी अध्ययन, अभ्यास और अनुभव से इस विधा की बारीकियों से परिचित हो सकता है। लेकिन अफसोस की बात तो यह है कि लोगबाग बिना सोचे समझे केवल लिखने में ही व्यस्त हैं, अध्ययन शायद उन्हें पसंद ही नहीं है।

आप लघुकथा का भविष्य कैसा देखते हैं ?

मैं यह बात दावे के साथ कह सकता कि आने वाले बरसों में ढेरों नए हस्ताक्षर इस विधा से जुड़ेंगे । लेकिन नए पाठक कितने जुड़ेंगे यह कहना बेहद मुश्किल है।

रश्मि लघुकथा विधा पर इतनी विस्तृत चर्चा तथा इस विधा से सम्बंधित मेरे कुछ अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर देकर मेरी जिज्ञासा शांत करने हेतु आपका बहुत बहुत शुक्रिया ।

❑❑❑

हिन्दी भाषा व हिन्दी साहित्य की सेवा में समर्पित

ओबीओ के विभिन्न चैप्टरों की गतिविधियों की झलक

SPECIALISED MONTESSORI WING

"Human brain grows 80% in early 5 to 7 years. Our internationally acclaimed classes are age appropriate and based on latest research in early childhood development. Our curriculum focuses on whole child development and instills in children skills and attitude, that prepares them for lifelong learning."

TECHNOLOGY

Each-n-every classroom fully equipped with audio / video teaching and learning aids. Fully computerized assessment and evaluation patterns.

ACTIVITIES

Well diverse Games and activities to help with physical development and early learning in areas of art / crafts, music and dance, and basic academic skills.

OUR CAMPUS

Fully equipped, CCTV monitored, covered and vast campus to facilitate each and every learning step.

CURRICULUM

Active enthusiastic children can refine and expand their skills / knowledge with different programs of investigation, exploration, discovery to achieve readiness in all areas of academic and social learning.

OUTDOOR LEARNING

Sure to love, unique programs to encourage team work and master basic key skills in each and every individual learner.

shaping the minds of tiny tots and setting new standards

DEHRADUN PUBLIC HIGH SCHOOL

119, HARINDER NAGAR
PATIALA- 147 001 (PB.)

95929-25526, 98143-85526
ddphs@yahoo.co.in